

## ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक	विषय-सूची		
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०	<b>कविता</b>	<b>लेखक</b>	<b>पृष्ठ</b>
	आपन पौ आपुहि बिसरचो	सद्गुरु कबीर	1
	विवेक पथ	राधाकृष्ण कुशवाहा	19
	डॉ. राममिलन के कविताएँ		26
	पलटू साहेब की बानी		31
	काया	डॉ. अमृत सिंह	35
	जीवन पथ	मणी मनेश्वर साहू	47
आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब	<b>स्तंभ</b>		
	पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 11	बीजक चिंतन / 20
	शंका समाधान / 28	परमार्थ पथ / 36	आदर्श जीवन / 48
संपादक धर्मेन्द्र दास	<b>लेख</b>		
आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश	कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र	श्री धर्मदास	6
मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास	द्रष्टा बनिये	सुश्री कृष्णा मुरारी	14
	प्रेमपात्र कैसे बनें?	विवेक दास	16
	आओ खुद में ढूँढ़ें खुशियाँ	डॉ. दीपक चोपड़ा	27
	लाओल्जे क्या कहते हैं?		30
	असली मंजिल की पहचान	भूपेन्द्र दास	32
	साधु की कुछ रहनियाँ		41
पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com	<b>धारावाहिक उपन्यास</b>		
वार्षिक शुल्क—40.00 एक प्रति—12.50 आजीवन सदस्यता शुल्क 800.00	कर्मयोगी कबीर	श्री भावसिंह हिरवानी	28

### आवश्यक सूचना

विगत कई वर्षों से पारख प्रकाश के शुल्क में कोई वृद्धि नहीं की गयी है, जबकि कागज आदि के दाम बढ़ गये हैं। इस जनवरी 2016 अंक के साथ पारख प्रकाश का आजीवन शुल्क 800 रुपये से बढ़ाकर 1000 रुपये किया जा रहा है। आशा है पाठकों का सहयोग पूर्ववत् मिलता रहेगा। पारख प्रकाश का वार्षिक शुल्क अभी पूर्ववत् 40 रुपये ही रहेगा।

निर्बंध

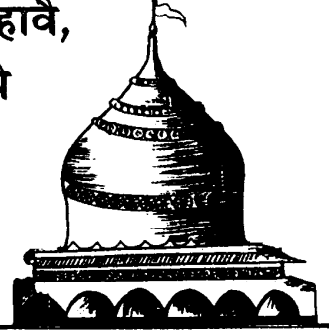
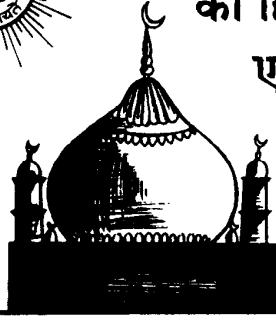
*ENGLISH TRANSLATION*  
Kabir Bijak (Commentary)  
Eternal Life  
Art of Human Behaviour  
Who am I?  
What is Life?  
Kabir Amritvani  
The Bijak of Kabir (In Verses)  
Kabir Bijak  
(Elucidation Sakhi Chapter)  
Saint Kabir and his Teachings  
Life and Philosophy of Kabir



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,  
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



# पारख प्रकाश

कर बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय।

सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय बीजक, साखी

वर्ष ]

इलाहाबाद, पौष, वि सं

, जनवरी

, सत्कबीराब्द

[अंक

आपन पौ आपुहि बिसर्यो  
जैसे श्वान काँच मंदिर में, भरमित भूसि मर्यो  
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि पर्यो  
वैसे ही गज फटिक शिला में, दशनन आनि अर्यो  
मर्कट मूठि स्वाद नहीं बिहुरे, घर घर रटत फिर्यो  
कहहिं कबीर ललनी के सुवना, तोहि कवने पकर्यो

x

x

x

बन्दे करिले आप निबेरा  
आपु जियत लखु आप ठौर करु, मूये कहाँ घर तेरा  
यह औसर नहीं चेतहु प्राणी, अन्त कोई नहीं तेरा  
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, कठिन काल को घेरा



## मन ध्यान में क्यों नहीं लगता?

प्रायः हर आदमी की शिकायत है कि मन ध्यान में नहीं लगता है। जब उनसे पूछा जाता है कि मन ध्यान में क्यों नहीं लगता तब कहते हैं कि समझ में नहीं आता परन्तु मन ध्यान में क्यों नहीं लगता इसका उत्तर किसी दूसरे से न पूछ कर स्वयं अपने से पूछना चाहिए। हमारा मन ध्यान में क्यों नहीं लगता इस प्रश्न का सबसे अच्छा उत्तर हमें छोड़कर दूसरा कौन दे सकता है। मन ध्यान में इसलिए नहीं लगता कि वह कहीं दूसरी जगह लगा हुआ है। जहां पर मन लगा है वहां से जब तक नहीं हटेगा तब तक ध्यान में नहीं लगेगा।

हमने अपने मन को अनेकों जगह लगा रखा है तथा उलझा रखा है। पहले वहां से मन को हटाना होगा तब मन ध्यान में लगेगा। फिर जिस दिन ध्यान में लाभ निश्चय हो जायेगा उस दिन ध्यान में मन अपने आप लग जायेगा। अभी ध्यान का लाभ हमें निश्चय नहीं है इसीलिए हमने अपने मन को कहीं और लगा रखा है और जहां लगा रखा है उसे ध्यान से अधिक मूल्यवान और कीमती समझ रहे हैं। आदमी का मन सदैव मूल्यवान वस्तुओं पर दौड़ता है। जहां अधिक लाभ और अधिक सुख दिखाई पड़ता है, उसी तरफ सबकी गति होती है। सबका मन उसी का चिन्तन करता है। जब ध्यान से अधिक मूल्यवान वस्तु मिल चुकी है तब मन वहां से हटे कैसे!

हम कीमत किसकी समझते हैं, मूल्यवान किसको समझते हैं स्वयं अपने से पूछ कर देखें। दूसरों से पूछने की आवश्यकता नहीं है। हमारे मन में क्या गुजरता है यह तो हम ही जान सकते हैं। इसलिए अपने मन को ही देखें, अपने मन की ही निगरानी करें और यह समझ लेना होगा कि दुनिया की चाहे कितनी कीमती से कीमती वस्तु क्यों न हो जहां अभी हमें पूर्ण लाभ का निश्चय है, जिससे हम एक क्षण के लिए भी विछुड़ना नहीं चाहते आजकल में उससे हमारा वियोग होना पक्का है। उस वियोग को कोई रोक नहीं सकता। चाह करके और पूरी मेहनत करके भी

उस वस्तु को अपने अधिकार में रख नहीं सकते। किन्तु आज हम उसकी सर्वाधिक कीमत मान रहे हैं। इसलिए मन उससे हट नहीं रहा है और उससे हटे बिना ध्यान में नहीं लगेगा।

जरा अपने जीवन के बीते हुए समय का ख्याल करें कितनी-कितनी वस्तुएं मिलीं, कितने-कितने अनुकूल एवं पूर्ण समर्पित लोग मिले, एक समय ऐसा लगता था कि इनके बिना मैं रह नहीं पाऊंगा, इनके बिना मेरा जीवन अधूरा है, आज न वे प्राणी रह गये हैं और न पदार्थ रह गये हैं किन्तु हमारा जीवन ज्यों का त्यों चल रहा है और आज उन प्राणियों और पदार्थों का रंच मात्र अभाव नहीं खटकता। ऐसे ही आज जिनका अभाव खटक रहा है, आज जिसे हमने मान रखा है कि इसके बिना मैं नहीं रह पाऊंगा कुछ वर्षों के पश्चात उसके बिना हम आराम से जी लेंगे और उसका अभाव नहीं खटकेगा। मन तो हर क्षण बदलता रहता है जो कुछ अनुकूलता मिल जाती है चाहे प्राणी की हो चाहे पदार्थ की, उसमें हम रीझ जाते हैं और उसकी कीमत मान लेते हैं। बस मन उसी का चिन्तन करने लगता है, उसी के ध्यान में डुबा रहता है। तब ध्यान में मन कैसे लगेगा।

मन में एक समय एक ही बात रहेगी। जब मन में प्राणी और पदार्थ गूँज रहे हैं तो ध्यान कैसे गूँजेगा, अध्यात्म की बात अच्छी कैसे लगेगी। दोनों तरफ हम नहीं चल सकते। प्राणी और पदार्थ को महत्त्व देते रहें और ध्यान-अध्यात्म को भी महत्त्व देते रहें दोनों एक साथ कैसे होगा! बाहर जब तक फीका नहीं होगा तब तक अध्यात्म मीठा नहीं लगेगा। बहुत पहले की बात है। वाराणसी में उस समय पुस्तक प्रकाशन चल रहा था। एक भक्त गुरुदेव जी के पास गये थे। एक दिन गुरुदेव जी और भक्त रिक्शा में बैठकर घूमने निकले। कुछ दूर चले तो एक नया मकान दिखाई पड़ा। भक्त ने कहा—देखिये साहेब, देखिये, कितना बढ़िया मकान है। गुरु जी ने कहा—तुमसे बढ़िया थोड़े हैं। आगे चले एक और मकान दिखाई पड़ा। भक्त ने फिर कहा—साहेब, देखिये-देखिये! इस मकान को देखिये, कितना बढ़िया है। गुरु जी ने कहा—सब मिट्टी-पानी का बना है। क्या बढ़िया रखा है। उस भक्त ने कहा—साहेब! आप तो सब पर पानी फेर देते

हैं। गुरुदेव जी ने कहा—जब तक सब पर पानी नहीं फेरोगे तब तक अपने पर पानी नहीं चढ़ेगा।

यदि अपने पर पानी चढ़ाना है, अपनी कीमत समझनी है तो सब पर पानी फेरना होगा। लेकिन हम अपनी कीमत समझ कहां पाते हैं। अपनी कीमत समझें। अपनी कीमत का अर्थ है अपने आपा, आत्मा की कीमत, अपने स्वरूप की कीमत। कीमत अर्थात् महत्त्व। जिस दिन अपने स्वरूप की कीमत, अपने आप की महत्ता समझने में आ जायेगी फिर ध्यान में मन लग जायेगा। जब तक हम बाहर की वस्तुओं में सुख खोज रहे हैं, बाहर की वस्तुओं, प्राणी-पदार्थों से अपनी रक्षा समझ रहे हैं तब तक हम अपने को असुरक्षित बना रहे हैं। बाहर कहीं कोई सुरक्षा नहीं है। सुरक्षा है तो अपने आप में, लेकिन अपने आप में अपना रक्षक कब बनेंगे जब बाहर से मन पूर्ण उदास, नीरस एवं अनासक्त होगा तब।

*आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात्।*

*अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत्।*

(भागवत)

अर्थात् जब संपूर्ण संसार के प्रति पूर्ण निर्वेद, पूर्ण वैराग्य हो जाता है तब आत्मा ही आत्मा का रक्षक हो जाता है। संसार से मन पूर्ण अनासक्त हो गया तो आत्मा अपने आप का रक्षक हो गया। अप्रमत्त होकर, पूर्ण सावधान होकर देखो कि काल रूपी सांप ने पूरे संसार को ग्रस लिया है। काल रूपी सांप पूरे संसार को निगल रहा है। कुछ को निगल चुका है, कुछ को निगलने की तैयारी कर रहा है। एक दिन सबको निगल जायेगा। जहां सब काल के गाल में जा रहे हैं वहां किससे मोह किया जाये, किससे बैर किया जाये। किसमें आसक्त होकर अपने को असुरक्षित बनाया जाये। कौन सदा रहने वाला है। जिसमें हम आसक्त हैं एक दिन न वे प्राणी-पदार्थ रह जायेंगे और न हम रह जायेंगे। सब कुछ को काल निरंतर निगल रहा है। कबीर साहेब ने कहा है—

*हाड़ जरै लकड़ी जरै, जले जलावन हार।*

*कौतुकहारा भी जरै, कासों करों पुकार*

जब आदमी मर जाता है तब श्मशान घाट में ले जाकर लोग चिता रचकर चिता पर लाश को रख देते हैं

और आग लगा देते हैं। चिता में आग लगती है शरीर जल जाता है। इस पर साहेब कहते हैं “हाड़ जरै” जिन हड्डियों से निर्मित शरीर को देखकर बड़ा अहंकार करता था कि मेरा शरीर बड़ा मजबूत है, बलवान है वे पृष्ठ हड्डियां चिता में जल जाती हैं, लेकिन केवल हड्डियां नहीं जलतीं, हड्डियों को जलाने वाली लकड़ियां भी जल जाती हैं। जिसने चिता में आग लगायी एक दिन वह आदमी भी जल जाता है। इतना ही क्यों “कौतुकहारा भी जरै” उस शवयात्रा में शामिल लोग जो तमाशा देखने वाले थे, वे कौतुकहार-शवयात्री भी एक दिन उसी चिता में जल जाते हैं। कौन बचता है। सद्गुरु कहते हैं—मैं किससे पुकार करूं? कौन संसार में ऐसा है जो मुझे बचा सके। कौन किसको बचा सकता है? बचा सकते हैं तो केवल अपने आप को। दूसरा कोई हमारा रक्षक नहीं होगा, इसलिए “आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता”—आत्मा ही आत्मा का रक्षक होता है जब पूरे संसार के प्रति अनासक्ति हो जाती है। कहां मोह करें? सब कुछ को काल निरंतर खा रहा है। कबीर साहेब ने बहुत सरल शब्दों में कहा है—

*झूटे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।*

*जगत चबैना काल का, कुछ मुठी कुछ गोद*

आदमी झूटे सुख को सुख कहता है। स्वाद का सुख, रूप का सुख, गंध का सुख, शब्द का सुख, स्पर्श का सुख, मान-सम्मान का सुख, पद-प्रतिष्ठा का सुख, गद्दी-महंती का सुख, पद-अधिकार, शासन-स्वामित्व का सुख—ये सब सुख थोड़े समय के लिए हैं। मान्यता मात्र का सुख है। हम इस झूटे एवं मान्यता के सुख को सच्चा सुख मान लेते हैं। इन्हें पाकर हमारा मन बड़ा प्रसन्न हो जाता है और इनमें आसक्त होकर वास्तविकता को भूल जाता है। हम यह देख नहीं पाते हैं कि—“जगत चबैना काल का, कुछ मुठी कुछ गोद” यह संसार काल का चबैना है। आदमी चबैना चबाता है कुछ को गोद में लिया रहता है, कुछ मुट्टी में लिया रहता है, कुछ मुख में चबाता रहता है। यह सारा संसार काल का चबैना है। काल निरंतर सबको चबा रहा है और इसी संसार में हमने लाभ मान रखा है। जब संसार में लाभ निश्चय है तब ध्यान में मन कैसे लगेगा!

पारख प्रकाश : जनवरी

मन में एक समय में एक ही बात रहती है। या तो संसार की याद रहेगी या तो ध्यान रहेगा। संसार की याद को हमने अधिक मूल्यवान समझा है तब ध्यान में मन कैसे लगेगा। जहां लाभ निश्चय होता है आदमी वहां पूर्ण समर्पित हो जाता है। जिस दिन ध्यान में पूर्ण लाभ निश्चय हो जायेगा उसके लिए पूर्ण समर्पित हो जायेगा। तब ध्यान में कठिनाई नहीं होगी। जहां लाभ का निश्चय होता है आदमी वहां कितनी कठिनाइयां सहन करता है। किसान खेती करता है तो ठंडी, गरमी, बरसात सबको सहन करता है। तेज लू चल रही है लेकिन किसान खेत में हल जोतता या गोड़ता है। शीतलहरी चल रही है परंतु लालटेन लेकर किसान आधी रात को पानी चलाने के लिए जाता है। यदि ठंडी, गरमी, बरसात से किसान डरे तो खेती नहीं कर पायेगा। मिट्टी, पानी, गोबर, खाद से किसान डरे तो खेती क्या करेगा! जो किसान सोचेगा खाद में, मिट्टी में कपड़े खराब हो जायेंगे वह खेती नहीं कर पायेगा। किसान तो मिट्टी में मिल जाता है, तब कहीं जाकर किसानी कर पाता है क्योंकि उसमें लाभ निश्चय है कि खेती यदि नहीं करेंगे तो क्या खायेंगे।

व्यापारी सुबह से शाम तक दुकान में बैठा रहता है। कितनी तपस्या करता है। कोई किसी को एक जगह चार घंटे बैठने के लिए कह दे तो बैठना बड़ा मुश्किल हो जायेगा। लेकिन व्यापारी सुबह दस बजे से लेकर रात आठ बजे तक दुकान में बैठा रहता है। कई बार खाने-पीने के लिए फुर्सत नहीं मिलती, फिर भी दिन भर परिश्रम करता है क्योंकि लाभ निश्चय है।

नौकरी में देख लें। अधिकारियों की तो डांट सुननी ही पड़ती है, अपने मातहतों का भी सुनना पड़ता है। मन मार कर रहना पड़ता है तब नौकरी निभती है। कहीं भी लाभ निश्चय हो जाये तो आदमी समर्पित हो जाता है। इसी पर संतगण कहा करते हैं—

*मिलना मंजूर है, तो बम्बई नहीं दूर है।*

*मिलना मंजूर नहीं, तो चौखट बड़ी दूर है*

मिलना मंजूर नहीं है तो चौखट बड़ी दूर हो जाती है और मिलना मंजूर है तो बम्बई दूर नहीं है। यहां मिलने का तात्पर्य है लाभ। लाभ निश्चय हो जाये कठिन-से-कठिन काम से भी आदमी घबरायेगा नहीं और लाभ

निश्चय नहीं है तो सरल से सरल काम करने के लिए पचास बहाने बनायेगा। जहां लाभ निश्चय हो जाता है वहां समर्पित हो जाता है। किन्तु जहां-जिसमें हानि का निश्चय हो जाता है उसका त्याग करने में जरा भी नहीं हिचकिचाता। चाहे वह वस्तु कितने परिश्रम से प्राप्त क्यों न हुई हो और कितनी प्यारी क्यों न हो हानि समझ में आने पर तुरंत त्याग देता है। श्री विशाल साहेब ने कहा है—

*बोई खेती पैदा भली, कर्ज मिले जो दीन।*

*जो दोनों से नाशि तन, त्यागे ताहि प्रवीन*

किसान खेती कर रहा है खूब अच्छी फसल हुई है लेकिन उसे यह पता लग जाये कि यह फसल मेरे जीवन के लिए खतरा है, फसल काटकर घर में ले जाऊंगा तो डाकू आकर लूट लेंगे तो किसान फसल का त्याग कर देता है। किसी को किसी ने कर्ज दे रखा है, कर्ज का पैसा मिलने वाला है और यह निश्चय हो जाये कि पैसा मिलेगा तो लेकिन मिलने के पश्चात लोग लूट लेंगे या जो पैसा वापस दे रहा है वही व्यक्ति बदमाशों को लगाकर मरवा देगा तो कहता है भैया, तू ही रख पैसा मुझे नहीं चाहिए। जिससे शरीर नाश होने का भय हो बुद्धिमान आदमी उसका त्याग कर देता है।

जहां से हानि का निश्चय हो उसका त्याग करने और जहां से लाभ निश्चय हो उसे ग्रहण करने दोनों के लिए आदमी का मन बड़ा बलवान होता है। अभी ध्यान में लाभ निश्चय नहीं है इसलिए थोड़ी-सी कठिनाई आयी, थोड़ा-सा पैरों में दर्द हुआ, थोड़ी-सी गरमी लगी तो घबड़ा गये। इससे काम नहीं चलेगा। इसलिए कष्ट सहन करना पड़ेगा और जहां-जहां मन लगा हुआ है वहां-वहां से हटाते जायें तब ध्यान में मन लगेगा। विवेक-विचार द्वारा समझें कि मन वहां क्यों लगा है, किसलिए लगा है? सुख के लिए लगा है, आनन्द के लिए लगा है, तो जरा सोचें कि दस-बीस-पचास वर्षों से प्राणी-पदार्थों में मन लगा है तो आज तक कितना आनन्द मिला, कितना सुख मिला। कितना आनन्द बटोर रखा है। और यदि आज तक आनन्द नहीं मिला, सुख नहीं मिला तो आगे के लिए क्या आशा की जाये !

पारख प्रकाश : जनवरी

प्राणी और पदार्थों से मिलने वाला जितना आनन्द है वही आनन्द क्लेश का कारण होता है। उनसे मिलने वाला जितना सुख है वही दुख का कारण होता है, तृष्णा और अभाव का कारण होता है। एक खुजलाहट, एक गुदगुदी होती है मन में, लेकिन उसके पश्चात मन बेचैन हो जाता है, तृष्णालु हो जाता है और अभाव की अनुभूति में जलता है। प्राणी और पदार्थ जनित जितने सुख हैं कोई सुख स्थायी नहीं है, सारा का सारा सुख क्षणभंगुर है। जब तक पदार्थ है और जब तक प्राणी अनुकूल है तब तक सुख है। पदार्थ हट गये, प्राणी प्रतिकूल हो गये, वियोग हो गया सुख खतम। स्थायी सुख तो आत्मजनित सुख है। मन की निर्मलता का, स्थिरता का, पवित्रता का सुख है लेकिन इस सुख का ख्याल ही नहीं है तब मन लगे कैसे यहां पर।

ध्यान में मन क्यों नहीं लगता, दूसरों से न पूछ कर अपने आप से पूछा जाये और एकांत में शांत चित्त होकर बिलकुल निर्मम और निष्पक्ष होकर सोचें कि यह प्रश्न मैं नहीं कर रहा हूँ दूसरा कर रहा है। तब सही उत्तर मिलेगा। हमसे कोई पूछे—ध्यान में मन नहीं लगता है क्या करूँ तो हम उसे समझायेंगे। क्या उन बातों का पालन हम अपने जीवन में कर रहे हैं। यदि नहीं कर रहे हैं तो ध्यान में मन कैसे लगेगा। दूसरों के लिए हम बड़े ईमानदार बनते हैं, बेईमान बनते हैं अपने लिए और अपने लिए जब तक बेईमानी चलती रहेगी तब तक स्थिरता जीवन में न आयेगी। इसलिए अपने लिए ईमानदार बनें।

अपने लिए ईमानदार बनने का अर्थ है जैसा हम कह रहे हैं वैसा स्वयं में रहना और वैसा करना। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*जस कथनी तस करनी, जस चुम्बक तस ज्ञान।  
कहहिं कबीर चुम्बक बिना, क्यों जीते संग्राम*

जैसी कथनी हो वैसी करनी हो और वैसी ही रहनी हो, कथनी के अनुरूप करनी हो तब ज्ञान चुम्बकीय हो जाता है। आचरण संयुक्त चुम्बकीय ज्ञान के बिना मन और इन्द्रियों के संग्राम में विजय नहीं मिलेगी। इसलिए सद्गुरु कहते हैं—जैसी कहे करे जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे। जैसे कहते हो वैसे ही करो। राग-द्वेष का निरवार करो। जैसी कथनी वैसी करनी का अर्थ है राग-

द्वेष का त्याग करना। राग-द्वेष का त्याग होते ही मन अपने आप ध्यान में लगेगा। मन में चल रहा है राग और राग के पीछे आता है द्वेष। कभी मन में मोह है तो कभी वैर है। यह मन मोह और वैर, राग और द्वेष के द्वंद्व में झूल रहा है। इससे ऊपर उठता ही नहीं है तो ध्यान में कैसे लगेगा। इसलिए अपने प्रति ईमानदार बनें। ईमानदार बनने का अर्थ है कथनी के अनुरूप करनी, आचरण करना और जहां-जहां मन लगा हुआ है वहां-वहां से हटाना।

यह मन अनेकों जगह लगा हुआ है। यहां तक तुच्छ से तुच्छ बात-वस्तु में लगा है और वहां से मन को हटाना बड़ा मुश्किल हो गया है। तम्बाकू की याद बराबर सता रही है और सोचते हैं कि ध्यान में मन नहीं लगता है। तम्बाकू को ध्यान से अधिक मूल्यवान मान लिया गया है। क्योंकि ध्यान के बिना मुक्ति हो सकती है परंतु तम्बाकू के बिना मुक्ति नहीं हो सकती इसलिए तम्बाकू से मन हट नहीं रहा है। ऐसी जहां-जहां आदत लगी है वे अधिक मूल्यवान हैं। ध्यान लगा करके क्या करेंगे। यदि लगता है कि ध्यान चाहिए तो जो गंदी आदतें पाल रखे हैं, विषयासक्ति पाल रखे हैं उनको दूर करने के लिए प्रयत्न करना होगा। दृढ़ निर्वेद करना होगा अपने दोषों के लिए, अपनी आदत और आसक्ति के लिए। जरा भी मुरौवत न हो, जरा सी भी छुट न हो। अपने मन की आदतों के लिए बेमुरौवत हो जायें, एकदम दृढ़, एकदम कठोर, क्रूर हो जायें। दूसरों के लिए क्रूर नहीं होना है, अपनी आदतों के लिए क्रूर-कठोर होना है। जब आदतों का, विषयासक्ति का त्याग हो जायेगा, गलत सोचना त्याग हो जायेगा तब ध्यान में मन अपने आप लग जायेगा। यह सोचते हैं कि गलत देखकर, गलत सुनकर, गलत बोलकर, गलत काम करके ध्यान में बैठ जायेंगे, पूजा में बैठ जायेंगे तो अपने आप को धोखा दे रहे हैं।

गलत सोचना, गलत बोलना, गलत काम करना, गलत देखना इन सबका पूर्णतया त्याग कर दें, और फिर रोज अभ्यास करें। ध्यान में मन अपने आप लग जायेगा। इसलिए अपने मन का द्रष्टा बनें और देखें कि मन किसकी याद कर रहा है, किसका चिन्तन कर रहा है? उस चिन्तन से हटायें, उस याद से हटायें तो मन ध्यान में अवश्य ही लगेगा।

—धर्मेन्द्र दास

पारख प्रकाश : जनवरी

# कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

शुक्ल जी के उपर्युक्त दृष्टिकोण का मूल्यांकन श्री सदाशिव द्विवेदी ने “तुलसी विचार और विवेचन” नामक शीर्षक के अंतर्गत किया है, कुछ अंश द्रष्टव्य है—

“आज के आधुनिक संदर्भ में फिर वही प्रश्न उठ खड़ा होता है कि सिद्धों, नाथों, या बौद्धों या संतों ने जिस धर्म की व्याख्या की है अथवा वे जिस रूप में धार्मिक आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करना चाहते थे, वह क्या वास्तव में लोकधर्म विरोधी था? क्या उसकी सामाजिक मान्यताएं सामाजिक विघटन के लिए थीं? और क्या उनके धार्मिक सिद्धान्त विध्वंसात्मक थे? यहां एक अत्यंत सूक्ष्म तथ्य हमारे समक्ष उपस्थित होता है। दार्शनिक या सामाजिक मान्यताएं सामाजिक वर्गों और आर्थिक व्यवस्था के अनुसार निर्मित होती हैं। प्रश्न यह है कि यदि नाथ, सिद्ध और संतों की मान्यताएं विध्वंसात्मक और तत्कालीन समाज-विरोधी ही थीं, तो उनका स्वरूप क्या था? इतना तो निश्चित है कि वे उस सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते थे, जिसने कुरीतियों को जन्म दिया था। वे भी भक्ति का आन्दोलन खड़ा करना चाहते थे, किन्तु उनकी भक्ति दूसरी थी। उनकी भक्ति के अधिकारी सभी नहीं थे, केवल निम्नवर्ग और ज्ञानी तथा बुद्धिमान व्यक्ति। कबीर ने कहा है कि यह भक्ति का घर ‘खाला का घर नहीं।’ यहां तो पहले ही सिर उतारकर रख देना पड़ता है। बड़ा जोखिम का यह रास्ता है। जिसमें सिर उतारने का साहस हो वही आगे बढ़ सकता है। एक दूसरा महत् कार्य जो ये संत कर रहे थे, वह यह था कि समाज की वास्तविक शक्ति का परिचय उन्हें था। निम्न और दलित वर्ग के उन्नयन को ही वे साधारण जनता का उन्नयन मानते थे। उनके अनुसार इसी वर्ग का पुनर्जागृत होना आवश्यक था। इसीलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा इनके पक्ष में कहा, दूसरी ओर तुलसीदास ने जिस सगुणोपासना पर विशेष बल दिया है, वह उन्हें स्वामी रामानन्द से प्राप्त हुई थी

और तुलसीदास वर्णाश्रम धर्मव्यवस्था को पुनः स्थापित करने के पक्ष में थे। उनका धर्म अभिजात-सम्प्रदाय के लिए विशेष रूप से लाभप्रद था। कारण, साधारण या निम्नवर्ग की जनता के समक्ष पहला शाश्वत प्रश्न था— अपने भोजन की व्यवस्था करना, तदुपरान्त समाज में जीना और अन्त में भक्ति की बात सोचना या न सोचना। संतों की बानियों में भक्ति का यही तीसरा रूप प्राप्त हुआ है और इसीलिए निम्नवर्गों को इन बानियों ने सर्वाधिक रूप से आकृष्ट किया था। जिसका पेट खाली हो और जो अधिक शोषण के कारण सामाजिकता का अनुभव ही नहीं कर पा रहा हो, उसमें सीस उतारने का साहस कहां से आयेगा। लोकधर्म से तात्पर्य साधारण जनता या बहुसंख्यक जनता के धर्म से है। गोस्वामी तुलसीदास की धर्म सम्बन्धी मान्यताएं उस रूप में निम्नवर्ग का समर्थन नहीं करतीं जिस रूप में अभिजात वर्ग की करती हैं। अतः उनके धर्म को आधुनिक संदर्भ में लोकधर्म की संज्ञा नहीं दी जा सकती। चूंकि सामंतवर्ग सर्वदा समाज के शासक रहे हैं, वे ही समाज के प्रतिनिधि रहे हैं, अतः सामंतों के द्वारा स्वीकृत किये जाने के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे लोक धर्म की संज्ञा दी है। उक्त निबंध में श्री द्विवेदी ने निष्कर्ष दिया है कि “वर्तमान युग में तुलसीदास का व्यावहारिक पक्ष प्रतिक्रियावादी सिद्ध होता है। वर्ष पहले के व्यावहारिक पक्ष की कुशलता जो आज प्रतिक्रियावादी सिद्ध हो रही है, उसे आधुनिक संदर्भ में व्यवहृत करना भी प्रतिक्रियावादी होगा एवं रूढ़ परंपरा को आगत करना होगा। सामाजिक विसंगतियों के उन्मूलन और सामाजिक संगठन का निर्माण—वर्तमान युग की ज्वलन्त आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति के लिए उस प्राचीन धार्मिक अनुगमन को स्वीकार न करके अपने युग के उपयुक्त व्यावहारिक पक्ष की खोज और

तुलसीदास विचार और विवेचन, रामचरित मानस की सामाजिक मान्यताएं, पृ. - ।



उसका निर्माण ही सामाजिक एकता को पुनर्जीवित कर सकता है।” (वही, पृ. )

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व के दशक में वर्तमान युग की ज्वलन्त आवश्यकताओं के मद्देनजर गांधी-अम्बेडकर-नेहरू के नेतृत्व ने उपयुक्त, व्यावहारिक सिद्धान्त पर गम्भीर चर्चाएं चलाकर उपजाऊ भूमि तैयार कर रखा था जिसका खाका भारतीय संविधान के लिए प्रस्तावित मसौदा बना। संविधान सभा के विवेकवान एवं बुद्धिमान सदस्यों ने एक-एक पंक्ति तथा एक-एक शब्द के चयन पर गहन गंभीर बहस करके (जो रिकार्ड में उपलब्ध है) संविधान का रूप दिया। यह प्रक्रिया बिल्कुल दूध को मथ-मथकर मक्खन निकालने जैसी थी। संविधान की प्रस्तावना नयी सोच को दर्शाती है जिसमें घोषणा की गयी है कि—‘भारत की जनता ने सत्यनिष्ठापूर्वक भारत को एक संप्रभुसत्ता सम्पन्न प्रजातांत्रिक गणराज्य का निर्माण करने तथा इसके सभी नागरिकों के लिए निम्न अधिकार सुनिश्चित करने का संकल्प लिया है— न्याय—सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक; विचार— अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और पूजा करने की स्वतंत्रता, मान-मर्यादा की एवं अवसर की समानता तथा हर व्यक्ति के सम्मान तथा राष्ट्र की एकता का आश्वासन देते हुए भावभाव में वृद्धि करना।’ वैसे तो संविधान की प्रस्तावना कबीर के धार्मिक दर्शन का सत्त प्रतीत होता है तथापि न्याय के समक्ष समता एवं समानता (धारा ), धर्म, जाति, गोत्र, लिंग एवं जन्म के स्थान के आधार पर भेद-भाव का निषेध (धारा ( ) ( )) सार्वजनिक नौकरियों में नियुक्ति के अवसर में समानता (धारा ( ) ( )), अस्पृश्यता का अंत (धारा ), विचार रखने एवं बोलने की स्वतंत्रता की रक्षा (धारा ) आदि ऐसे मौलिक अधिकारों के प्रावधान हैं जिन पर कबीर-वाणी से एक एक पद या साखी उद्धृत की जा सकती है। सारांशतः भारतीय संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रावधानों को देखकर कहना अनुचित नहीं होगा कि संविधान निर्माताओं ने कबीर के विचारों को आधुनिक भारत के निर्माण के लिए उपयुक्त होने का प्रमाण-पत्र दे दिया। इससे वे सारे तर्क खारिज होते हैं जो कबीर एवं निर्गुणवादी संतों पर आरोपित

किये जाते हैं। संविधान सभा ने युगों-युगों से प्रचलित धर्मशास्त्रों तथा कथित ईश्वरीय विधानों के स्थान पर कबीर-संदेशों से अभिसंचित नये विधानों के द्वारा परिवर्तन का मार्ग खोल दिया। नये युग में प्रवेश का मानो प्रथम उद्घोष था जो संदेश देता है कि जनता के हित से सर्वोपरि कोई शास्त्र-विधान नहीं है। मानवकल्याण के लिए हजारों वर्ष पुरानी मान्यताएं आवश्यकतानुसार बदलना अपरिहार्य है। अनुभव का निष्कर्ष है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि वेद नित्य है, स्वयंभू है और परमोच्च प्रमाण वाला है तथापि ऋषियों ने ऐसी घोषणा की कि कुछ कृत्य, आचार एवं व्यवहार, जो पहले शास्त्र विहित थे, कलियुग में वर्जित होने चाहिए। आधुनिक ऋषियों-संविधान सभा के सदस्यों ने नवीन कलिवर्ज्य की घोषणा की जिसमें प्रमुख हैं—

( ) धर्म, गोत्र, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव करना वर्जित है।

( ) धर्म, गोत्र, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के ऊपर किसी प्रकार की अशक्तता दायित्व, प्रतिबंध नहीं थोपा जायेगा। यथा

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, विश्रामालयों एवं मनोरंजन के स्थानों पर प्रवेश वर्जित करना निषिद्ध है।

(ख) कुओं, जलाशयों, स्नानघाटों, सड़कों एवं सैरगाहों, जिन्हें राजकीय कोष से आंशिक या पूर्णतः संचालित किया जाता है, के प्रयोग से रोकना निषिद्ध है।

( ) अस्पृश्यता समाप्त की जाती है और इसका किसी भी रूप में व्यवहार करना निषिद्ध है। अस्पृश्यता के आधार पर किसी प्रकार का दबाव बनाना कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा।

उपरोक्त कृत्य जिसे संविधान सभा ने वर्जित किया वे प्राचीन काल से निम्न वर्ग एवं नारियों के धार्मिक और सामाजिक शोषण के लिए प्रयोग किया जाता रहा था। इसके फलस्वरूप स्त्रियों की पूरी आबादी एवं शिल्पी, कारीगर और श्रमिक जनता भेड़-बकरी के समान हो गयी। इस स्थिति का लाभ लेकर विदेशियों ने

हमें गुलाम बनाया। इन्हें वीं सदी में संत कबीर ने पहचाना। कबीर ने निंदनीय कृत्यों की वर्जना की 'को ब्राह्मण को शूद्र'; 'को पुरुषा को नारी'; 'कहु धौं छूति कहाँ से उपजी, तबहिं छूति तुम मानी', 'पांटे बूझि पियहु तुम पानी', 'पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया', या 'सुन्नति कराय तुरुक जो होना औरत को क्या कहिये' तथा—

*'जो तू करता वर्ण विचारा, जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा  
जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा, कृतम जनेऊ घालि जग धन्दा'*

धर्मशास्त्रों के द्वारा द्विज एवं शूद्र में विभाजन किया गया; फिर अनिरवासित शूद्र (लोहार, बढ़ई आदि) एवं निरवासित शूद्र (चाण्डाल आदि); एक अन्य विभाजन के अनुसार—भोज्यान्न (जिनका पकाया भोजन ब्राह्मण कर सके) तथा अभोज्यान्न (जिनका पकाया भोजन ब्राह्मण न करे) गौतम, मनु, तथा अन्य आचार्यों ने शूद्रों को धन संचय से मना किया है।" डॉ. पा. वा. काणे लिखते हैं कि विष्णुधर्मसूत्र ( / ) के अनुसार तीन उच्च वर्णों का स्पर्श करने पर अस्पृश्य को पीटे जाने का दण्ड मिलता था। इन कुकृत्यों को निषिद्ध करने का संदेश संविधान-निर्माताओं ने संत कबीर की वाणी से ग्रहण किया।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वैदिक काल से लेकर अबतक किस प्रकार धार्मिक विचारों, पूजा एवं आचरणों और व्यवहारों में परिवर्तन हो चुके हैं तथापि निहित स्वार्थ के लोग कुकृत्यों का व्यवहार चाहते हैं अथवा चालू रखने का समर्थन करते हैं। उन व्यवहारों से जो व्यक्ति पीड़ित होते हैं या जो विवेकवान हैं वे पीड़ा व्यक्त करते हैं, किसी की भावना को ठेस पहुंचाना नहीं चाहते। बस एक चाह होती है, प्रेम-सौहार्द पर आधारित सामाजिक विकास। वस्तुतः स्मृतिकारों के विचारों में भी भारी मतभेद हैं, एक दूसरे का विरोध भी करते हैं। पुरानी मान्यताएं कायम रखने के लिए जो धर्मशास्त्र का सहारा लेते हैं वे उन्हीं शास्त्रों के निर्देशों का उल्लंघन करते हैं। महाभारत में व्यास ने कहा है—

• धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. ।  
• वही, पृ. ।

प्रमाणम्। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ( / वन पर्व) जिसका अर्थ है कि तर्क अस्थिर है, वेद एक दूसरे के विरोध में मत रखते हैं। कोई एक ऋषि नहीं है जिसका मत प्रामाणिक माना जाये। धर्म के विषय में जो सत्य तत्त्व है वह गुहा में छिपा हुआ है। अतः वही मार्ग अनुसरण करने योग्य है जिन पर लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति चलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भी विवेकवान ऋषि थे जो किसी शास्त्र को प्रामाणिक 'धर्मतत्त्व' मानने से इनकार करते थे। साल पहले बुद्ध ने अनेकों शास्त्र-विहित मान्यताओं को अस्वीकार किया। वैदिक पंडितों ने उन्हें नास्तिक कहा लेकिन 'वेद एवं स्मृतियों में मौलिक अन्तर पाया जाता है। वे परस्पर इतनी विरोधी हैं कि मिताक्षरा के समान प्रसिद्ध ग्रन्थों एवं लेखकों ने यहां तक कह दिया कि ये ऐसे समाज के लिए लिखित हैं जो सहस्त्रों, लाखों वर्ष पुराना है।"

प्राचीनकाल से भारतीय मनीषी 'सत्य की खोज' को मूलमंत्र स्वीकार किये हैं। कुछ कहते हैं वेद स्वयं परम प्रमाण है। परन्तु ऋग्वेद के ऋषि स्वयं कहते हैं—

“एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋ. / / )”  
—सत्य एक है जिसकी व्याख्या विद्वान लोग अनेक प्रकार से करते हैं। इसी सिद्धान्त पर संत कबीर ने 'सत्संग' की परम्परा चलायी, यानी ऐसी मजलिस जहां सत्य पर आचरण करने वाले एवं सत्य की खोज करनेवाले एकत्र हों तथा सत्य का अनुसंधान करें। उनकी वाणियों से विदित होता है कि उन्होंने अपने सैद्धांतिक मत को संतों, पंडितों, योगियों एवं ब्रह्मज्ञानियों के समक्ष प्रकट किया, इसका अभिप्राय हो सकता है दूसरों को अपना-अपना पक्ष रखने का मौका देना। कबीर वाणी कमरे में बैठकर नहीं लिखी गयी है। कबीर ने वाद, विवाद एवं संवाद को अपने उपदेश का माध्यम बनाया। बृहदारण्यक उपनिषद् में 'याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद' जैसे लिखा गया है। जनक की सभा थी। जनक ने कहा—जो सर्वोच्च ब्रह्मज्ञानी हो वह उन एक हजार गायों, जिनके एक-एक सींग में पांच-पांच तोले सोने बंधे हैं, को अपने घर हांककर ले जा सकता है। किसी

• धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, पृ.

पारख प्रकाश : जनवरी

को साहस नहीं हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों से कहा—इन गायों को हांककर ले चलो। शिष्यों ने गायें हांक दी। सभा में उपस्थित विद्वानों ने विरोध किया। फिर सवाल-जवाब चले। एक-एक करके सब पराजित होकर चुप हो गये। तब उस सभा में उपस्थित गार्गी ने प्रश्नों की बौछार कर दी। याज्ञवल्क्य ने अपने उत्तरों से गार्गी एवं सभा में उपस्थित अन्य सभी विद्वानों को संतुष्ट किया। अंत में विदग्ध नामक ऋषि के सवालियों के संतोषजनक उत्तर याज्ञवल्क्य को देना पड़ा। याज्ञवल्क्य ने फिर भी सभी ब्राह्मणों से कहा—आप में से कोई या सब मिलकर मुझसे प्रश्न करें या आप सबसे अथवा किसी एक से जो चाहें उससे मैं प्रश्न कर सकता हूँ। सब चुप रहे। इसके प्रश्नात याज्ञवल्क्य जनक से मिलने गये। दोनों के बीच भी संवाद चले। जनक ने प्रश्नों एवं उत्तरों के बीच-बीच में कहा—‘एक हजार गायों का दान करता हूँ’ पर याज्ञवल्क्य ने कहा—‘बिना पूरा उपदेश दिये मैं दान ग्रहण नहीं करूंगा।’

यह हमारी प्राचीन परंपरा है। बिना शंका-समाधान के सत्य तक पहुंचा नहीं जा सकता। किसी भी महाज्ञानी से बिना शंका-समाधान किये, उसकी हर बात मान लेने से हम अंधभक्त बनने के मार्ग पर चलने लगते हैं जिसमें धोखा या खतरा भी हो सकता है। जिस प्रकार हर पुरानी चीज बेशकीमती नहीं होती उसी प्रकार हर पुरानी मान्यता समयानुकूल भी नहीं होती। आधुनिक युग ज्ञान-विज्ञान का है। पुराने उपयोगी ज्ञान को हम अब छोड़ चुके हैं। पचास के दशक में, मोट एवं रहट से पानी खींचकर खेत की सिंचाई करते थे। अब न कुआं है, न मोट या रहट। अब तो धरती छेदकर बिजली पंप के द्वारा इतने खेतों की सिंचाई एक दिन में कर लेते हैं जितने के लिए हमें - दिन लग जाते थे। हल-बैल का स्थान अब ट्रैक्टर ने ले लिया है; गांव की गलियों में बैलों के गले की घंटियों की आवाज सुनाई नहीं पड़ती। कुओं एवं तालाब के घाटों पर पनिहारिन भी नहीं होतीं। घर-घर या गली-गली चांपा कल पानी देता है। बाजार में लालटेन-ढिबरी नहीं मिलती। अब डाकिया चिट्ठी भी नहीं लाता, झट से मोबाइल से बात हो जाती है या एस.एम.एस. अथवा वीडियो रिकार्डिंग सेकेंड में पहुंच जाती है। दादा जी के

मरने की खबर हमें तब मिलती थी जब तेरही बीत जाती थी। अर्थात् युग बदलता है तब नये ज्ञान का भी उदय होता है। हमें उसे अपनाकर समय के साथ बढ़ने की आवश्यकता है। तकनीकी ज्ञान हो या धार्मिक, आधुनिक विचारधारा के अनुरूप हमें उसे स्वीकार करने की जरूरत है। अतीत के अहंकार का भार कब तक अपने सिर पर ढोते फिरेंगे। कुछ लोग समयानुकूल परिवर्तन की लहर को शास्त्र या परंपरा या प्राचीनता का नाम देकर मुट्ठी में बंद करना चाहते हैं। नदियों पर तटबंध के द्वारा या पहाड़ों के बीच डैम-बैराज (बांध) बनाकर बरसात के पानी को रोक तो लेते हैं किन्तु जब पानी का सैलाब आता है तब मानव-निर्मित मजबूत से मजबूत डैम-बैराज के गेट या तो समय रहते खोल दिये जाते हैं अथवा विलम्ब होने पर उनको ध्वस्त करते हुए पानी अपना नया-नया मार्ग बनाता बढ़ता है और बहाव के मार्ग में पड़ने वाले गांव-शहर सब कुछ बर्बाद-तबाह हो जाते हैं। वैचारिक क्रांति की दशा जब बनती है तब सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल मच जाती है। हजारों-लाखों वर्ष प्राचीन कहे जाने वाले वेदों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों आदि ब्राह्मण धर्मशास्त्रों की मजबूत किलेबंदी को बुद्ध के धर्मचक्र परिवर्तन ने तहस-नहस कर दिया था। उसी प्रकार शंकराचार्य, कुमारिल का वेदान्त-मीमांसा, रामानुज-वल्लभाचार्य-रामानन्द का वैष्णव धर्म आन्दोलन, तांत्रिकों-योगियों के चौरासी सिद्धों के तिलिस्म जब अपने शिखर पर थे तब वीं सदी के संत कबीर की वैचारिक आंधी ऐसी चली कि सबके सब हक्के-बक्के रह गये। स्वतंत्र भारत के संविधान-सभा में मानवीय मूल्यों की चर्चा में (बीसवीं शती में) संत कबीर का जादू छाया रहा जिसका साक्षी भारतीय संविधान है। इस वैचारिक संदर्भ में डॉ. पा. वा. काणे की टिप्पणी उद्धृत करने के योग्य प्रतीत होती है : “मीमांसा भी बहुधा हमें निश्चित निष्कर्षों की ओर नहीं ले जाती, शबर, कुमारिल, प्रभाकर ऐसे मीमांसक कतिपय विषयों पर परस्पर विरोधी मत रखते हैं और यह भी आगे प्रदर्शित किया जायेगा कि स्वयं महान् मीमांसकों ने स्मृतियों के सरल वचनों की व्याख्या में विरोधी निष्कर्ष स्थापित कर दिये हैं। हमारे धार्मिक एवं सामाजिक विचारों के लम्बे इतिहास में परिवर्तन एक

परम सत्य रहा है और वे लोग जो ऐतिहासिक तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं, यही कहना चाहते हैं कि स्मृतियां मानव लेखकों द्वारा लगभग से वर्षों की अवधि में लिखी गयीं और उन पर तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक परिवेश का प्रभाव अवश्य पड़ा, उनके बहुत-से सिद्धान्त इस प्रकार नियोजित नहीं हो सकते कि उनसे कोई एक अविरोद्ध या स्थिर आचार-संहिता बन सके, वे सिद्धान्त सभी हिन्दुओं द्वारा सदा के लिए सामान्य नहीं हो सकते, बीसवीं शती में हमारी जनता जैसे परिवर्तनों को प्रतिष्ठित करने के लिए स्वतंत्र है, जो आज के परिवर्तन वातावरण में या तो आवश्यक है या समाहित हो चुके हैं और यह विधि मनु, याज्ञवल्क्य तथा मिताक्षरा एवं कल्पतरु ऐसे मध्यकालीन धर्मशास्त्रकारों द्वारा आज्ञापित भी रही है।”

अब तो हम वीं शती में पहुंच गये हैं, जो नये-नये आयामों के अनुसंधान में विश्वास करती है। अतः समयानुकूल धार्मिक आचरण समय की आवश्यक मांग है। रूढ़ियों पर प्रहार जिन्हें विचलित करता है उनसे विनम्रतापूर्वक निवेदन है कि वे कृपा करके प्राचीन धर्मशास्त्रों का विवेकपूर्वक अध्ययन करें। उनमें वैदिक-कर्मकांडों की कठोर आलोचना पायेंगे। उदाहरण के लिए छान्दोग्योपनिषद् से शौवउद्गीथ (कुत्तों का सामगान) की ओर ध्यानाकर्षण करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। “एक बार दल्भ का पुत्र बक या मित्रा का पुत्र ग्लाव एक जलाशय के पास वेदाध्ययन के लिए गया। उसके पास एक श्वेत कुत्ता आ गया। जिसके पीछे कुछ छोटे कुत्ते भी आ गये। छोटे कुत्तों ने श्वेत कुत्ता से कहा—

‘तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्यो-चुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति—( . . . )’—भगवन, हमारे भोजन के लिए गाइए क्योंकि हम भूखे हैं।

श्वेत कुत्ता ने कहा—कल सुबह तुम सब हमें यहीं पर मिलो। बक-ग्लाव दूसरे दिन कुत्तों का गीत सुनने

के लिए पहले ही वहां पहुंचकर कुत्तों की प्रतीक्षा में बैठा रहा। वहां कुत्ते आये और जैसे सोम-यज्ञ में सोमरस निकालते समय पुरोहित लोग बहिष्पवमान स्तोत्र गाते हुए एक दूसरे को पकड़कर गोल-गोल घुमते हैं वैसे ही वे कुत्ते अपने मुंह से एक दूसरे की पूंछ पकड़कर घूमने लगे और बैठकर सामगान करने लगे— ‘ओ ३ मदा ३ मों ३ पिबा ३ मों ३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता : ३ न्रमिहा २ हरदन्नपते ३ न्रमिहा २ हरा २ हरो ३ मिति ( . . . ) —ओम् हम खायें, ओम् हम पीयें। देवता वरुण, प्रजापति और सविता यहां अन्न (भोजन) लायें, अन्न लायें, ओम्।’

उपनिषद् का ऋषि पुरोहितगीरी का परिहास करता है जिसे स्मरण करने में बक-ग्लाव लीन था।

इसी प्रसंग में राधाकृष्णन ने लिखा है—‘क्रिया कलाप के विरोध में आध्यात्मिक पूजा ने स्थान ग्रहण किया। ऐसे अवसर आते हैं जबकि संस्कारों भरा पुरोहितों का धर्म उन्हें कृत्रिम प्रतीत होता है और तब वे अपने समस्त व्याजोक्ति पूर्ण (व्यंग्यपूर्ण वचन) उद्गारों को प्रकट करते हैं। वे इस प्रकार निन्दासूचक शब्दों में वर्णन करते हैं कि पुरोहितों की शोभायात्रा उन कुत्तों की शोभायात्रा के समान है जिनमें से हर एक अपने आगे वाले की पूंछ पकड़े हुए हैं और कहता है, “ओम्, आओ खायें। ओम्, आओ सुरापान करें...आदि आदि। इस प्रकार ब्राह्मणों के कठोर क्रिया कलाप पर, जिन्होंने मनुष्य की दुर्बल आत्मा को बहुत कम सान्त्वना प्रदान की, उपनिषदों की शिक्षा द्वारा नियंत्रण किया गया है।’ राधाकृष्णन ने उपनिषदों के उद्घरण से निष्कर्ष निकाला है कि ‘उपनिषदों का दृष्टिकोण वेदों की पवित्रता के अनुकूल नहीं है : माना गया है कि वैदिक ज्ञान सच्चे आन्तरिक दैवीय ज्ञान से बहुत हीन कोटि का है और हमें मुक्ति नहीं प्राप्त करा सकता। मुण्डकोपनिषद् में कहा है, निम्नकोटि का ज्ञान वह है जो हमें ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, कर्मकांड एवं व्याकरण आदि से प्राप्त होता है किन्तु उच्च कोटि का ज्ञान वह है जिसके द्वारा अविनश्वर ब्रह्म को जाना जाता है।’

. भारतीय दर्शन, भाग- , पृ. ।

. वही, पृ.

. धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, पृ. - ।

# व्यवहार वीथी

## वचन-बाण की चोट

मनुष्य के पास मन और वाणी की दो महान और बड़ी संवेदनशील शक्तियां हैं। मन और वाणी के कारण ही मनुष्य मनुष्य है, अन्यथा उसमें और जानवरों में कोई खास अंतर नहीं है। यही दोनों मनुष्य की उन्नति के आधारस्तंभ हैं, परंतु यदि इनका दुरुपयोग किया गया तो ये दोनों अत्यंत खतरनाक बन जाते हैं। आवश्यकता है दोनों को सम्हालकर रखने की और सदुपयोग करने की।

वाणी की अपेक्षा मन और ज्यादा संवेदनशील है और जल्दी-जल्दी बदलता रहता है। ऋग्वेद ( / / ) के ऋषि भी कहते हैं—अन्यस्य चित्तम् अभि सञ्चरेण्यम्। अर्थात् लोगों का मन बहुत जल्दी बदलने वाला है। और जैसे ही मन बदलता है वैसे ही वाणी बदल जाती है। कब किस आदमी का मन बदल जाये और किस आदमी की जवान से कैसी वाणी निकल जाये कुछ कहा नहीं जा सकता। दूसरों के मन-वाणी पर किसी की कोई स्ववशता नहीं है। स्ववशता है तो अपने मन-वाणी पर। हम अपने मन-वाणी को संयमित रखें। न किसी के लिए गलत सोचें और न गलत बोलें। फिर यह परवाह ही न करें कि कौन हमारे बारे में क्या सोचता है और क्या कहता-बोलता है।

जो चीज जितनी नाजुक और संवेदनशील होती है उसके उतनी जल्दी बिगड़ने और टुटने की संभावना रहती है। इसलिए उसकी उतनी ही ज्यादा देखभाल एवं सुरक्षा की आवश्यकता होती है। हमारा मन भी ऐसा ही नाजुक एवं संवेदनशील होने से बहुत जल्दी बिगड़ने एवं टुटने वाला है। इसलिए इसकी भी निरंतर देखभाल और सुरक्षा करते रहना अत्यंत आवश्यक है। जैसे कोई मनुष्य अपने शरीर पर लोहे का मजबूत बख्तर-कवच (आज की भाषा में कहें तो बुलेटप्रूफ जैकेट) पहन लेता है तो उसे तीर, तलवार, भाला, बंदूक की गोली लगने का डर नहीं रह जाता, वह इनसे अपनी रक्षा कर लेता है वैसे ही जो मनुष्य अपने मन पर विवेक का मजबूत बख्तर-कवच पहन लेता है उसे अपने मन पर किसी के वचन-बाण लगने का डर नहीं रह जाता। वह किसी के वचन-बाण से

आहत नहीं होता, क्योंकि उसे वचन-बाण की चोट नहीं लगती।

जिसे किसी की बातों की चोट नहीं लगती उसका जीवन धन्य है क्योंकि अब उसे कोई दुखी नहीं कर सकता, किन्तु दूसरी तरफ यह भी उतना ही सच है कि जिसे बातों की चोट नहीं लगती वह आदमी मुरदा है, उसकी संवेदना मर चुकी है। उसके जीवन में कभी बदलाव नहीं आ सकता और वह कुमार्ग छोड़कर सुमार्ग में नहीं आ सकता तथा वह अपने जीवन को पत्थर से हीरा नहीं बना सकता।

आइये थोड़ा इस पर विचार करें कि हमारे अपने मन में बातों की चोट लगती है या नहीं और क्या बातों की चोट न लगना सदैव सुखद तथा हितकर होता है और लगना दुखद एवं अहितकर। बातों की चोट लगना और न लगना विवेक और अविवेक पर निर्भर करता है और उसका अच्छा-बुरा, सुखद-दुखद परिणाम भी विवेक-अविवेक पर ही निर्भर है।

पहले हम बातों की चोट लगने को लेते हैं। दुनिया में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अपने को बहुत बड़े ज्ञानी, विद्वान, समझदार, लेखक, प्रवक्ता, त्यागी-वैरागी, साधु-महात्मा मानते हैं, परंतु उन्हें बातों की चोट बहुत जल्दी लगती है। अपने मन के थोड़े प्रतिकूल बात सुनकर वे बहुत जल्दी आवेश में आ जाते हैं, क्रोध में आकर कुछ का कुछ कहने लग जाते हैं, हरदम चिढ़े रहते हैं, दुखी बने रहते हैं तथा छोटी-छोटी बातों को लेकर नाराज हो जाते हैं। उन्हें हर आदमी अपना शत्रु और विरोधी जान पड़ता है। ऐसे लोग अपने को चाहे जो मानें, चाहे जितने बड़े पद पर और चाहे जितने प्रतिष्ठित हों, बड़े नासमझ और अविवेकी होते हैं। उनका मन अनेक कामनाओं एवं अहंकार से भरा होता है।

जिसके मन में कामना और अहंकार नहीं होंगे उसे इस प्रकार बातों की चोट क्यों लगेगी ! यदि हमें इस प्रकार बातों की चोट लगती है, अपने संबंध में दूसरों द्वारा कही गई भली-बुरी बातों को सुनकर हम क्षुब्ध, पीड़ित और दुखी होते हैं तो हम मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्य के आकार में जानवर हैं। जिस प्रकार पशु दूसरों द्वारा हांके जाते हैं हम भी उसी प्रकार हांके जा रहे हैं। कोई हमें चाहे जिधर भी हांकता रहे।

जिसने अपने मन को इस प्रकार नाजुक और कोमल बना रखा है और जिसे हरदम बातों की चोट लगा करती है दुनिया की कोई ताकत उसे सुखी नहीं कर सकती। वह हरदम दुखी ही बना रहेगा। यह आदमी का अपना बनाया दुर्भाग्य है। इस दुख से बचने का एक ही उपाय है कि हम अपने मन पर विवेक का मजबूत कवच पहन लें। इस बात की परवाह ही न करें कि हमारे बारे में लोग क्या कह रहे हैं। हां, हम दूसरों के बारे में गलत राय न बनायें और गलत बात न कहें। हम जितने विनम्र, निष्काम, सेवापरायण और सहिष्णु होते जायेंगे उतना हमारा मन मजबूत बनता जायेगा और हमें बातों की चोट लगना बंद हो जायेगा।

बातों की चोट लगने का एक दूसरा पहलू भी है जिसे समझ लेना बहुत जरूरी है। और वह यह है कि जिसे बातों की चोट लगती है वह बहुत जल्दी अपना सुधार कर लेता है। बातों की चोट लगने से वह गलत दिशा और गलत रास्ते में जाना और गलत कर्म करना छोड़ देता है और सुखी हो जाता है तथा दुनिया के लिए बहुत कुछ कर जाता है और दुनिया में अपना नाम भी अमर कर जाता है।

एक संत कहीं जा रहे थे। उन्होंने एक जगह देखा कि एक आदमी शराब पीकर रास्ता के किनारे बेहोश गंदगी में पड़ा हुआ है और उसके मुख पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। उन्होंने उसे उठाकर स्वच्छ जगह पर लाकर लिटा दिया और पानी लाकर उसका मुंह धोते हुए कहा कि भले आदमी! जिस मुंह से भगवान का नाम लेना चाहिए उसी मुंह से गंदी चीज को ग्रहण कर जीवन बरबाद कर रहे हो। होश में आने पर जब किसी ने उसे यह बात बतायी तब उसे बड़ी चोट लगी और उसी क्षण से उसने शराब का त्याग कर दिया और सन्मार्ग में लग गया।

एक साधु एक वेश्या को देखकर आसक्त हो गया और वेश्या के पास जाकर अपनी कामना प्रस्तुत किया। वेश्या ने उससे कहा कि यदि तुम अमुक जगह से अमुक चीज मुझे लाकर दो तो मैं तुम्हारी कामना पूरी करने के लिए तैयार हूं। कई दिनों की लंबी यात्रा और कठिन परिश्रम के पश्चात जब वह साधु उस वस्तु को लाकर वेश्या को देता है तब वेश्या ने उसके सामने उसे नाली में फेंक दिया। यह देखकर साधु एकदम क्रुद्ध हो गया और वेश्या से कहा—तूने मेरे इतने दिन के कठिन परिश्रम से प्राप्त इतनी कीमती चीज को नाली में फेंककर मेरी कामना

पूरी करने की जगह मेरा अपमान क्यों किया? तब वेश्या ने साधु से कहा—यह चीज तो दुबारा फिर मिल सकती है, किन्तु जो तुम इतने वर्षों की अपनी अमूल्य साधना को काम-कीचड़ की नाली में फेंकने को तैयार हो क्या वह दुबारा मिल सकती है। वेश्या की बात सुनकर साधु को बड़ी चोट लगती है और वह लौटकर समर्पित होकर साधना में लग जाता है।

कहावत के अनुसार अपनी पत्नी रत्नावली से यह सुनकर कि तुम्हें जितना प्रेम मेरे चाम से है उतना राम से होता तो तुम्हारा कल्याण हो जाता, तुलसीदास जी को बड़ी चोट लगती है और उनका जीवन राम के लिए समर्पित हो गया। अपनी सौतेली मां सुरुचि से यह सुनकर कि यदि तुम्हें पिता (राजा उत्तानपाद) की गोद में बैठना था तो तुम्हें मेरी कोख से जन्म लेना था, बालक ध्रुव को बड़ी चोट लगती है और उनका जीवन ही बदल जाता है। अमीचंद बड़े प्रसिद्ध गायक थे, परंतु बड़े दुर्व्यसनी भी थे। लाहौर की एक सभा में स्वामी दयानंद सरस्वती से यह सुनकर कि अमीचंद! हो तो तुम हीरे, परंतु कीचड़ में पड़े हो। अमीचंद को बड़ी चोट लगती है और उसी क्षण से उन्होंने सारे दुर्व्यसनों का सदा के लिए त्याग कर दिया।

एक रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर तथा सारथी से यह सुनकर कि एक दिन हर मनुष्य की यही दशा होती है सिद्धार्थ के मन में बड़ी चोट लगी और उनकी दुनिया ही बदल गयी। युवावस्था में सारा राज-वैभव-भोग त्यागकर विरक्त हो गये और सिद्धार्थ से बुद्ध बन गये।

इस प्रकार बातों की चोट लगना महान सौभाग्य की बात है। जिस प्रकार हवा चलने पर राख उड़ जाती है और उसके नीचे दबी-छिपी आग प्रकट हो जाती है उसी प्रकार जिसे इस प्रकार बातों की चोट लगती है उसके मन के ऊपर की भ्रम, अज्ञान, मोह एवं वासना की राख उड़ जाती है और अंदर दबी ज्ञान-साधना की आग प्रकट हो जाती है जिससे उसका जीवन आलोकित हो जाता है।

अब थोड़ा बातों की चोट न लगने पर विचार करें। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें बातों की चोट नहीं लगती, उन्हें कितना भी समझाओ उन पर कोई असर नहीं होता। ऐसे लोग कठोर पत्थर के समान होते हैं जिस पर कितना भी पानी उड़ेलो न तो वह भीगता है और न मुलायम होता है। ऐसे लोगों के लिए ही कहा गया है—भैंस के आगे बीन बजाय भैंस ठाढ़ पगुराय या अंधे के आगे रोना अपना

दीदा खोना। जो किसी की सीख मानता नहीं वह अपना सुधार कैसे कर सकता है !

ऐसे लोगों के लिए ही सद्गुरु कबीर ने कहा है—  
 चारिमास घन बर्षिया, अति अपूर जल नीर।  
 पहिरे जड़ तन बखतरी, चुभै न एकौ तीर।  
 मूरख के सिखलावते, ज्ञान गाँठ का जाय।  
 कोइला होय न उजरा, जो सौ मन साबुन लाय।  
 मूढ़ कर्मिया मानवा, नख शिख पाखर आहि।  
 बाहनहारा क्या करे, जो बान न लागै ताहि।

(बीजक, साखी , , )

अर्थात्—बादल वर्षा काल में चारों महीने मूसलाधार पानी बरसाये, परंतु ऊसर जमीन में कुछ पैदा नहीं होता और कोई चाहे कितना भी बाण मारे परंतु जिसने लोहे का मजबूत बखर पहन रखा है उसके शरीर में एक बाण भी नहीं चुभता वैसे जिसने जड़ता-हठ का कवच पहन रखा है, उसके सामने कोई कितना भी ज्ञान की बातें कहे, उसे चाहे जितना समझाया जाये उसे ज्ञान की एक बात भी नहीं लगती। वह सीख नहीं मान सकता। ऐसे मूर्खों को सीख देने पर उपदेश की शांति भले चली जाये, परंतु मूर्ख मनुष्य उसी प्रकार सुधर नहीं सकता जिस प्रकार सौ मन साबुन लगाकर धोने पर भी कोयला उजला नहीं हो सकता। मूर्खतापूर्वक काम करने वाले आदमी ने नख से शिखा तक मूर्खता का कवच पहन रखा है तब ज्ञानोपदेश रूपी बाण चलाने वाले उपदेश क्या करें जब मूर्ख आदमी को एक बाण भी नहीं लगता।

जो गलत रास्ते पर जा रहा हो, गलत काम कर रहा हो, उसके लिए हठ पकड़ लिया हो, डांट-फटकार कर, पुचकार कर चाहे जिस विधि से समझाने पर भी न समझता हो, डांट-फटकार, प्रेम-पुचकार किसी बात की जिसे चोट न लगती हो, उसे जीवित कैसे कहा जाये। वह तो मानो जीवित मुरदा है, क्योंकि उसके भीतर की संवेदना मर चुकी है। वह गलत रास्ते को छोड़कर सही रास्ते पर नहीं आ सकता। यदि बातों की चोट न लगने वाले ऐसे लोगों में हमारा-आपका भी नंबर है तो हमें शीघ्र जग जाने की आवश्यकता है और हम अपना मन ऐसा संवेदनशील बनायें जिसमें बातों की चोट लगना शुरू हो और हम अपना सुधार कर सकें।

बातों की चोट न लगने का एक दूसरा पहलू है। जिसे किसी की किसी बात की चोट नहीं लगती वह कृतार्थात्मा

है, उसका जीवन धन्य है। कोई गाली दे, कटु कहे, निंदा करे, अपमान करे—कोई परवाह नहीं, उसे कोई दुखी नहीं कर सकता। वह कभी यह जानने की चेष्टा ही नहीं करता कि मेरे बारे में कोई क्या कहता है। वह अपने मन पर विवेक का ऐसा मजबूत कवच पहन लेता है कि उसमें किसी के वचन-बाण की चोट लगती ही नहीं। उसका मन एकदम शीतल-शांत हो जाता है। ऐसे ही शांतात्मा पुरुष के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा सर पैना।

तुलसी तऊ लेश रिसि नाहीं। सो शीतल कहिये जग माही

यदि कोई क्रोध भरे मुख से बात करे, सामने ही तीखे तीर जैसी वाणी का प्रहार करे, तो भी जिसके मन में लेशमात्र भी क्रोध न उत्पन्न हो, तुलसीदास जी कहते हैं, संसार में उसको ही शीतल-शांत पुरुष कहते हैं।

जैसे हाथी-सवार व्यक्ति कुत्तों के भूंकने की जरा भी परवाह नहीं करता, उधर देखता भी नहीं, वैसे उस पुरुष की दशा होती है जिसे बातों की चोट लगना बंद हो गया है। सद्गुरु कबीर ऐसे ही पुरुष के लिए कहते हैं—

हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डार।

धान रूप संसार है, भूँकन दे झग मार

इस प्रकार बातों की चोट न लगना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है और यही जीवन जीने की सच्ची कला है। जिसे यह कला आ जाती है उसके मन में किसी के लिए शिकायत नहीं रह जाती। उसके जीवन से क्षोभ, कटुता, दुख विदा हो जाते हैं। जिसे इस प्रकार बातों की चोट नहीं लगती वह स्वयं भी कोई ऐसी बात नहीं कहता जिससे दूसरों को चोट लगे।

जिसे हितैषी माता-पिता, सज्जन-भक्त, संत-गुरुजनों की कल्याणकारी बातों की चोट लगती है और जो दुर्गुण-दुराचरण का रास्ता छोड़कर चलने लगता है और सद्गुण-सदाचार, सेवा-भक्ति के पथ पर चलते हुए निरंतर अपने मन पर संयम रखता है धीरे-धीरे उसके जीवन में एक ऐसी स्थिति आ जाती है जिसमें बातों की चोट लगना बंद हो जाता है और वह अगाध शांति-सुख के सागर में निमज्जन करने लगता है। इससे व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों क्षेत्र उज्ज्वल हो जाते हैं। जीवन जीने की यह सुंदर कला है। यह कला सबको आत्मसात कर लेनी चाहिए।

—धर्मन्द्र दास

पारख प्रकाश : जनवरी

## द्रष्टा बनिये

लेखिका—सुश्री कृष्णा कुमारीजी

सृष्टि में दो प्रकार की ऊर्जा विद्यमान होती है— पहली सकारात्मक, दूसरी नकारात्मक। मानव अपने विचारों, शब्दों, भावों के माध्यम से ऊर्जा का आदान-प्रदान करता है। जैसी ऊर्जा वह सृजित करता है, सामने वाले व्यक्ति पर वैसा ही प्रभाव छोड़ता है। हम देखते भी हैं कि कुछ व्यक्ति कहते ही हमारी बात मान लेते हैं या बिना कहे ही समझ जाते हैं और कुछ पूरी बात सुनने के पहले ही इनकार कर देते हैं। यह हमारे द्वारा प्रदत्त ऊर्जा का ही परिणाम होता है। जो देते हैं, वैसा ही मिलता है—सीधा-सा गणित है, यही सृष्टि का अटल नियम भी है। इसीलिए तो कहते हैं कि ज्ञानीजनों की संगत में रहो और हमेशा सकारात्मकता से सराबोर रहो।

हमारे द्वारा बोला गया एक शब्द किसी को जीवन दे सकता है, दिशा परिवर्तित कर सकता है, तो किसी को गलत मार्ग पर भी ले जा सकता है; क्योंकि शब्द ब्रह्मस्वरूप है, उसमें अनन्त शक्ति है, हमने इस पर गम्भीरता से विचार तो किया है, मगर व्यवहार में नहीं लाते। कहीं भी, कभी भी, कुछ भी बोल देते हैं, फिर किसी के टोकने पर कहते हैं कि अरे, वह तो मैंने ऐसे ही कह दिया था...ऐसे ही कैसे...? जबकि नीति कहती है 'सौ बार सोचकर एक बार बोलो।' मगर हम इसके ठीक विपरीत व्यवहार करते हैं। हमें इल्म होना चाहिए कि हमारे द्वारा बोली गयी एक-एक ध्वनि ब्रह्माण्ड में स्थायी रूप से व्याप्त होती है यानी शाश्वत हो जाती है। अब तो विज्ञान द्वारा ब्रह्माण्ड की ध्वनियों को पुनः सुना जा सके, इसके भी प्रयास चल रहे हैं। वस्तुतः 'ध्वनि-विज्ञान' एक स्वतन्त्र विज्ञान है। जिस पर वर्तमान समय में कई देशों में शोध कार्य चल रहे हैं। वैज्ञानिक प्रयासरत हैं और ऐसे यन्त्र के निर्माण की सोच रहे हैं, जिससे अन्तरिक्ष में व्याप्त प्राचीन वाणी को पकड़कर सुना जा सके।

कहने का तात्पर्य है कि हम 'कुछ भी' का नहीं, अपितु सारगर्भित शब्दों का ही प्रयोग करें। कम-से-कम बच्चों के मामले में तो; क्योंकि बच्चों के कोमल मन पर एक-एक शब्द, एक-एक घटना बहुत जल्द चिर प्रभाव छोड़ती है। सब कुछ उसके अवचेतन मन में

इकट्ठा होता जाता है, लेकिन घर में, समाज में, विद्यालय में अकसर बच्चों से कहा जाता है—'तुम कुछ भी नहीं कर सकते', 'तुम किसी काम के नहीं हो', 'तुम निरे बेवकूफ हो', 'तुम एक काम भी ठीक से नहीं कर सकते', 'तुम्हारे दिमाग में तो गोबर या भूसा भरा हुआ है', 'देखो! तुम्हारे भाई-बहन कितने काबिल हैं' आदि-आदि। वाह भाई! इतनी निगेटिव एनर्जी बच्चों में भरकर हम क्या चाहते हैं? यह सब सुनकर क्या बालक कुछ करने लायक रहेगा? किसी काम का बचेगा? नहीं, कदापि नहीं। कहते हैं कि एक झूठ को भी बार-बार बोला जाये तो वह सच लगने लगता है। तब नकारात्मक शब्दों का दोहराव आलम्बन को कहीं का छोड़ेगा? नहीं...ना...। हर बार नहीं...नहीं...सुनते-सुनते तो समर्थ व्यक्ति भी न चाहते हुए भी नकारा बन सकता है; क्योंकि उसकी सकारात्मक ऊर्जा शनैः-शनैः निगेटिव एनर्जी में बदलने लगती है। सुनी गयी एक-एक ध्वनि उसकी हर कोशिका को प्रभावित करती है, अध्यात्म की दृष्टि से शनैः-शनैः उसकी मानसिकता वैसी ही होने लगती है, एक समय बाद यह उसके संस्कार बन जाते हैं।

गुणीजन, हमारे बुजुर्ग तो यहां तक कहते हैं कि 'इनकार' भी सकारात्मक तरीके से करना चाहिए। निगेटिव शब्दों का प्रयोग अच्छे-खासे व्यक्ति का जीवन बरबाद कर देता है। मसलन, किसी बालक से बार-बार कहा जाये कि तुम तो निरे बेवकूफ हो, तो एक-न-एक दिन वह मान ही लेगा कि वह वाकई में बेवकूफ है; क्योंकि सभी व्यक्ति उसे यही मानते हैं, वे कहते भी हैं। बालक की हर कोशिका इस बात को स्वीकार चुकी होती है। नकारात्मक ऊर्जा उन पर हावी हो चुकी होती है। जबकि सामाजिक एवं नैतिक मान्यता भी यही है कि मूर्ख को मूर्ख, लंगड़े को लंगड़ा कभी नहीं कहना चाहिए। बात यहीं खत्म नहीं होती, अपितु उपर्युक्त शब्दों के प्रयोगकर्ता पर भी इस बात का निगेटिव प्रभाव पड़ता है। हमारे द्वारा उच्चरित शब्दों का पहले तो हम पर ही असर पड़ेगा, जाहिर है। यह भी ध्यातव्य है कि बेवकूफ या नकारा व्यक्ति से भी अगर यह कहा जाये

पारख प्रकाश : जनवरी



कि तुम तो बहुत बुद्धिमान हो, कर्मठ हो; यकीन मानिये, उसमें जादुई शक्ति का संचार होने लगेगा और जल्द ही वह बुद्धिमान एवं कर्मशील बन जायेगा। एक दिन वह बहुत कुछ कर जायेगा; क्योंकि सकारात्मक ऊर्जा के संचार से वह अपनी तरफ से श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ प्रयास करेगा। थोड़ी-सी भी उपलब्धि उसे खुशी से भर देगी। उसमें असीम उत्साह का संचार होगा और उत्साह से बड़ी कोई शक्ति अखिल सृष्टि में हो ही नहीं सकती।

इस प्रसंग का कड़वा सच तो यह है कि अमूमन, आदमी कहने के पहले कुछ भी नहीं सोचते। बस, जो मुंह में आया बोल दिया। उन्हें इस बात का इल्म तक नहीं होता कि वह जो कह रहे हैं, कुछ भी गलत बोलकर किसी की भी जिन्दगी को बरबादी की राह पर ढकेल देते हैं। अतः बड़ों को चाहिए कि वे हमेशा, हर हाल में सकारात्मक विचारों का ही प्रयोग करें। बल्कि उनकी नजर में जो निटल्ले हैं, उनसे भी यही कहें कि You are Creator 'तुम स्रष्टा हो', तुम अनन्त हो', 'तुम में अनन्त की शक्ति है', आदि आदि। 'तुम चाहते क्या हो?', जो तुम चाहते हो, उसे हर हाल में प्राप्त कर सकते हो, बशर्ते कि तुम्हारे काम एवं भाव पवित्र होने चाहिए और स्वयं पर सम्पूर्ण विश्वास तथा आस्था होनी चाहिए। इसी सन्दर्भ में ईसा ने कहा है—

*'नन्हों में-से एक को भी तुच्छ न समझना।'*

(संत मस्ती, / )

कुरआन शरीफ में भी उल्लिखित है—

*'बच्चों के मध्य न्यायपूर्वक और समान व्यवहार करना चाहिए।'*

*'बच्चों से अच्छा व्यवहार करो, उनकी कमियों को नजर अन्दाज करते हुए उन्हें सही शिक्षा दें।'* (ईसा)

जाहिर है, हर व्यक्ति ब्रह्मस्वरूप है, अनन्त शक्ति से सम्पन्न है, लेकिन अज्ञानतावश उसे इस बात का अहसास नहीं हो पाता है और हमें ऐसे व्यक्ति को यही अनुभूति तो करवानी है। अतः सभी व्यक्तियों को ऐसे नकारात्मक विचारों, शब्दों, ऊर्जा से बचना चाहिए। यदि सकारात्मकता को नहीं भी अपना सकते तो कम-से-कम नकारात्मकता से अवश्य बचना चाहिए। बच्चों को उत्साह नहीं दे सकते तो कम-से-कम हीन भावना तो उनमें नहीं भरें। एक बार हीन भावना के भर जाने के बाद उससे उभरने में बरसों लग जाते हैं और कभी-कभी तो आदमी इससे उभर ही नहीं पाता।

तो जाहिर है कि यथासम्भव हमें इन बातों से बचने की कोशिश करनी चाहिए। मगर यह इतना आसान भी नहीं है। यदि कोई बालक कक्षा में उद्वण्डता करता हो, पढ़ता नहीं हो, हर रोज स्कूल नहीं आता हो, गृह-कार्य भी नहीं करता हो, ऐसे में शिक्षक मारने, पीटने, डांटने के बजाय यह कहे कि 'तुम अच्छे बच्चे हो', 'रोज स्कूल आ सकते हो', 'तुम पढ़ भी सकते हो', 'थोड़ी-सी कोशिश करो तो गृहकार्य भी कर सकते हो।' क्या ऐसा करना सम्भव हो सकता है, जी बिलकुल नहीं...पहला उत्तर ये ही होगा, मगर यह काम जरा मुश्किल जरूर है, लेकिन असम्भव कदापि नहीं। यह बहुत साहसिक कदम है। सामने सारी विपरीत परिस्थितियां हों और ऐसे में सकारात्मक प्रतिक्रिया...।

इस बात पर कुछ दिन पहले पढ़ा हुआ एक सूत्र याद आ रहा है कि हराना बहुत आसान है, मगर किसी को जिताना उतना ही मुश्किल। वाकई झल्लाना बहुत सरल है, मगर प्यार से समझाना...। फिर भी सम्भावनाएं तो हर क्षेत्र में होती हैं। स्मरण रहे कि जिसको हम एकदम नकारा, बुद्धू समझते हैं, वही शख्स एक दिन ऐसा कार्य कर गुजरे कि दुनिया देखती रह जाये; क्योंकि प्रकृति हर व्यक्ति को एक कमी, तो एक खूबी अवश्य प्रदान करती है। अतः व्यक्ति चाहे तो सब कुछ कर सकता है, उसमें असीम ऊर्जा निहित होती है। वैसे भी हर आदमी, हर काम तो नहीं कर सकता। जिसके लिए यह बना है, वही काम बेहतरीन तरीके से कर सकता है। अपनी रुचि का काम हर कोई बहुत अच्छा कर लेता है।

वैसे भी ईश्वर ने यह अधिकार किसी को भी नहीं दिया है कि वह दूसरे व्यक्ति के लिए किसी भी सन्दर्भ में निर्णायक बने। कम-से-कम कुछ भी उलटा-सीधा, गलत-सलत बोलकर किसी भी शख्स की जिन्दगी को बरबाद करने का तो बिलकुल भी नहीं और फिर यह भी तो जरूरी नहीं कि दूसरों को परखने का हमारा नजरिया सही ही हो, गलत भी हो सकता है। दुनिया में कोई पारंगत नहीं होता है। इसलिए कहा भी गया है कि निर्णायक नहीं, द्रष्टा बनो। सामने वाले से हम जो चाहते हैं, वैसे ही ऊर्जा उसकी ओर प्रवाहित करें ताकि उसके अन्दर जाकर उसकी मनःस्थिति को बदलने में हम सहायक बन सकें।

(साभार : कल्याण, जुलाई )

पारख प्रकाश : जनवरी

## प्रेमपात्र कैसे बनें?

लेखक—विवेकदास

आप समाचार-पत्रों, टी.वी. चैनलों और बड़े-बड़े होर्डिंगों में देखें होंगे कि अमुक बाबा से मिलिये यदि आप प्रेम में असफल हैं, पति या पत्नी को वश में करना है, किसी को अपने अनुसार करना है। लोग ऐसी बातों को देख-सुनकर ऐसे बाबा लोगों के पीछे बहुत रुपया-पैसा खर्च करते हैं किन्तु क्या वे अपने मकसद में कामयाब हो पाते हैं? नहीं। केवल भ्रम में पड़कर अपना समय और शक्ति बरबाद करते हैं और हाथ कुछ नहीं आता।

यदि आप, लोगों को अपना बनाना चाहते हैं, लोगों से प्रेम पाना चाहते हैं तो यहां कुछ ऐसे सूत्र दिये जा रहे हैं जिनका प्रयोग करने पर विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि आप जिसे चाहें अपना बना सकते हैं, और प्रेमपात्र बन सकते हैं।

. क्षमा—हमसे कभी किसी तरह की गलती हो जाती है तो हम चाहते हैं कि लोग हमें क्षमा करें। यदि कोई हमें क्षमा कर देता है तो हम अनायास ही उनके हो जाते हैं और हमारी नजर में उनका कद ऊंचा हो जाता है। आप ख्याल करें जिस भी व्यक्ति ने आपको क्षमा किया हो उसके प्रति आपकी भावना कैसी रही है।

पौराणिक कहानी है भृगु मुनि ने विष्णु की छाती पर लात मारी तो विष्णु ने उन्हें क्षमा कर दिया इससे विष्णुजी भृगु मुनि की नजर में महान हो गये और दुनिया की नजर में भगवान हो गये।

लोग थोड़ी-थोड़ी बातों में तुनक जाते हैं, उलझ जाते हैं और व्यवहार खराब कर लेते हैं तथा अपनों से भी पराये हो जाते हैं। आप झुंझलाकर, उत्तेजित होकर या प्रतिकार करके किसी के दिल में अपना स्थान कैसे बना सकते हैं? जबकि ऐसे करने वालों को आप खुद पसंद नहीं करते।

एक सच्ची घटना है। पति-पत्नी के बीच झगड़ा हो गया। पति ने आवेश में आकर पत्नी को खूब मारा। पत्नी बेहोश होकर गिर पड़ी। पति को लगा कि यह मर

गयी। उसे अफसोस हुआ, वह रस्सी लेकर पेड़ पर चढ़ा और फांसी लगाकर लटक गया। पत्नी को होश आ गया। देखा पति लटक रहे हैं। दौड़कर गयी और पति का पैर अपने कंधों पर लेकर उनको फांसी से बचायी। पति इतना अभिभूत हुआ कि रोने लगा “जिसे मैंने इतना मारा वही खुद मेरी रक्षा कर रही है।” वह अपनी पत्नी से माफी मांगने लगा। पत्नी कहती है, “आप इतना अधीर न होइये। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आपने अज्ञानवश ही यह किया है।” पत्नी के क्षमामय व्यवहार से पति का हृदय परिवर्तन हो गया और पत्नी के प्रति उसका सम्मान और प्रेम बढ़ गया।

कहा जाता है यूनान के महान संत सुकरात की पत्नी झगड़ालू स्वभाव की थी। बात-बात पर झगड़ा करती थी। सुकरात एक दिन कुछ लोगों के बीच बैठकर कुछ उपदेश कर रहे थे। उनकी पत्नी ने किसी बात पर नाराज होकर घर लिपाई करने वाले पोतना से फेंककर मारा। वह सीधा जाकर उनके मुंह पर पड़ा। सुकरात ने मुस्कराते हुए कहा—‘गरजने वाले बादल बरसते नहीं लेकिन आज तो बरसने लगे।’ पत्नी को बड़ा अफसोस हुआ और क्षमा मांगने लगी।

जब किसी से कोई गलती हो जाती है तो हम तत्काल उसे डपट देते हैं। उलटा-सीधा कहते हैं। या वहीं पर उपदेश देना शुरू कर देते हैं जबकि वहां पर उसे हमदर्दी की, सहारे की आवश्यकता होती है। एक तो वह स्वयं घबराया रहता है, दूसरे उस पर दबाव पड़ता है तो उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। एक सच्ची घटना है एक बच्ची दसवीं कक्षा में पढ़ती थी। उसके माता-पिता को उससे बहुत आशा थी लेकिन आशा के विपरीत वह बच्ची परीक्षा में कम अंक लायी। जब वह मार्कशीट लेकर आयी और पिता को पता चला तो उसे खूब डांट लगायी और कहा—“हम तुम्हारी हर इच्छा पूरी करते हैं। इतना-इतना खर्च करके तुम्हें पढ़ा रहे हैं, और तुम्हारी यह स्थिति है; जाओ चुल्लूभर पानी

पारख प्रकाश : जनवरी

में डूब मरो।” आदमी बेहोशी में क्या कहता है उसे पता तो रहता नहीं। बच्ची एक तो कम मार्क्स आने की वजह से दुखी थी ही, पिता के फटकार ने और दुखी कर दिया। सोचा अब जी करके क्या करूंगी, जहर खाकर मर गयी।

सोचें, यदि पिता उसे सांत्वना देते, साहस देते कुछ नहीं बेटा, तुम महत्त्वपूर्ण हो तुम्हारा रिजल्ट नहीं, फिर से मेहनत करो। तो वह पिता का सहारा पाकर निश्चित ही सकारात्मक रूप से आगे बढ़ती और उसका अमूल्य जीवन यूं ही नहीं जाता।

क्षमा वह साधन है जिसके माध्यम से हम अपनों के सिरताज तो हो ही जाते हैं, गैर भी श्रद्धा भाव से देखते हैं।

. मधुर वाणी—

*तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजै चहुँ ओर।*

*वशीकरण एक मंत्र है, तजि दे वचन कठोर*

मीठा वचन ऐसा वशीकरण मंत्र है जिसका प्रयोग करने पर लोग अपने हो जाते हैं। लेकिन कटु वाणी का प्रयोग करने पर अपने भी पराये हो जाते हैं।

कितने लोगों की बात-बात में कटु कहने की आदत होती है। इससे वे भले ही सोचते हों कि हम दूसरों पर रोब जमाते हैं किन्तु रोब क्या जमायेंगे उनकी नजर में अपने आप को गिरा लेते हैं। वाणी एक वरदान है। प्रकृति की तरफ से उपहार है। इसका दुरुपयोग करके इसे अभिशाप न बनायें।

कुछ लोग थोड़े-थोड़े में उत्तेजित होकर अपने से छोटों या अधीनस्थ लोगों को मूर्ख, बेवकूफ, पागल, बौराहा आदि अपमानजनक शब्दों से सम्बोधित करते हैं। उस समय वे भले ही कुछ न कह पाते हों किन्तु उनका दिल इतना दुखता है कि वे विचलित हो जाते हैं। फिर बाद में उन्हें आप कितना ही पुचकारो और प्यार दो उनके घाव को नहीं भर सकते। उनके मन में आपके लिए तिरस्कार ही पैदा होगा।

कमान से निकले तीर, शरीर से निकले प्राण और मुख से निकली जवान कभी वापस लौटते नहीं, अतएव बहुत ही सावधानी से वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

महाभारत के अनुसार महाभारत युद्ध का एक प्रमुख कारण है द्रौपदी का कटु वाक्य ‘अंधे के अंधे होते हैं’। इस बात ने दुर्योधन के हृदय को छलनी कर दिया। वह पहले से ही ईर्ष्यालु प्रकृति का था ही, इस अपमानजनक वाक्य ने अग्नि में घी का काम किया। इसीलिए इस अपमान का बदला लेने के लिए पांडवों को जुआ में हराकर द्रौपदी का चीर हरण करवाया और महाविनाश को आमंत्रण दिया।

चाहे कोई भी हो छोटे बच्चे, पति, पत्नी, पिता, पुत्र, अनुगामी कभी भी किसी के प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, यदि आप उनके प्रेमपात्र बनना चाहते हैं तो। हमेशा याद रखिये; मीठी वाणी से बढ़कर और कोई मंत्र नहीं जिससे दूसरों को अपना बनाया जा सके। इसलिए अपने अंतःकरण रूपी तराजू पर तौल कर ही वाणी का प्रयोग करें।

*बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।*

*हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन*

(सद्गुरु कबीर, बीजक)

. सेवा-सहयोग की भावना—हम जिन लोगों के बीच रहते हैं उनके साथ हमेशा सेवा-सहयोग की भावना रखें। हमेशा उनके सेवा-सहयोग के लिए तत्पर रहें। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्वयं तो दूसरों से सेवा की अपेक्षा रखते हैं; किन्तु जब दूसरों को सेवा-सहयोग की आवश्यकता होती है तो उनकी उपेक्षा कर देते हैं। आप सुख के समय भले ही किसी का साथ न दे पायें चलेगा, किन्तु यदि कोई मुसीबत में हो तो उसको जरूर साथ दें। सहयोग करें। ऐसा करके आप लोगों के दिल में राज कर सकते हैं।

घर-परिवार में पति-पत्नी के बीच सेवा और समर्पण की आवश्यकता होती है। यदि आप अपने जीवन-साथी को अपने अनुसार बनाना चाहते हैं, उसके दिल में अपना स्थायी स्थान बनाना चाहते हैं तो उसकी उपेक्षा मत कीजिए। खासकर वह दुख या मुसीबत की अवस्था में हो तो पूरी आत्मीयता के साथ उसको सहयोग दें, उसकी सेवा करें। कभी-कभी यह देखा जाता है कि पति बीमार है तो पत्नी बड़ी तत्परता से हर

पारख प्रकाश : जनवरी

प्रकार से उसकी सेवा करती है, किन्तु जब पत्नी बीमार हो जाती है तो पति वैसा नहीं कर पाता, उसे डॉक्टर-वैद्य के पास तो ले जाता है किन्तु और सेवा नहीं कर पाता। परिवार में और सदस्य हैं तो औरों से सेवा-सहयोग मिल जाता है तो बात बन जाती है किन्तु पति-पत्नी ही खास हों, तब तो पूरा सेवा और सहयोग पति को करना चाहिए जैसा कि वह अपने लिए पत्नी से चाहता है। कोई भी दुख और परेशानी की अवस्था से गुजर रहा हो तो उसे प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। इसमें बड़े-छोटे की बात नहीं है। पति को यह अहंकार नहीं गांठना चाहिए कि मैं तो बड़ा हूँ, पति हूँ। पति-पत्नी को एक दूसरे को सहयोगी और मित्र मानकर एक दूसरे का सेवा-सहयोग करना चाहिए।

एक सच्ची घटना है। एक भाई की पत्नी बीमार पड़ी और लगभग डेढ़ महीना तक बिस्तर पर रही। पति पूरे भाव से उसकी सेवा करता था। यहां तक कि उसके कपड़े भी धो देता। यह पत्नी को अच्छा नहीं लगता। वह कहती—आप यह न कीजिए, तो वह कहता—यदि मैं तुम्हारी सेवा न करूँ तो कौन करेगा? तुम्हें तनिक भी संकोच नहीं मानना चाहिए।

अपने हों या दूसरे सबके प्रति सेवा और सहयोग की भावना रखनी चाहिए क्योंकि यही हम भी चाहते हैं।

एक ब्राह्मण घर की बहू थी। उसको बच्चा हुआ किन्तु एक-डेढ़ महीने के पश्चात उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और पागल जैसे व्यवहार करने लगी। घर वाले उसको डॉक्टर के पास ले जा रहे थे। शहर दूर था। ट्रेन से यात्रा करनी पड़ी। बच्चा कुछ समय पश्चात भूख से रोने लगा। उसे चुप कराने का बहुत प्रयास किया गया लेकिन सब बेकार। उनके पास जो बोतल वाला दूध था; वह समाप्त हो गया था और मां दूध नहीं पिला रही थी। वहीं पर बुरका पहनी हुई एक मुस्लिम महिला बैठी थी और यह सब देख रही थी। उसने कहा—बच्चे को मुझे देंगे। उसको बच्चा दे दिया गया। वह उस बच्चे को लेकर अपनी छाती से लगा लिया। बहुत देर तक बच्चा दूध पीता रहा और

यह दृश्य ट्रेन में बहुत सारे लोग देख रहे थे। वह ब्राह्मण परिवार भी देख रहा था। सबका उस महिला के प्रति अहोभाव था।

पथिकजी महाराज ने बड़ा ही सुन्दर कहा है—  
*किसी के काम जो आये उसे इंसान कहते हैं।  
 पराया दर्द अपनाये उसे भगवान करते हैं*

वास्तव में जो दूसरों का काम आता है उसे ही सचमुच में इंसान कहना चाहिए। अपने लिए तो सभी जीते हैं जो दूसरों की सेवा निस्स्वार्थ भाव से करता है वास्तव में वही भगवान है।

अतएव यदि हम दूसरों के प्रति सेवा-सहयोग की भावना रखते हैं, तो हमें भी सेवा-सहयोग तो मिलता ही है साथ ही लोगों की दृष्टि में हम ऊंचे भी हो जाते हैं। लोगों के स्नेह और प्रेम का भाजन बनते हैं और सबसे बड़ी बात सेवा-सहयोग की भावना से हमें जो आत्मिक संतोष होता है वह अद्भुत है।

. **त्याग भाव**—यदि आप लोगों का प्रेमपात्र बनना चाहते हैं तो अपने स्वार्थ को घटाएँ और दूसरों के लिए त्याग करें। प्रसिद्ध उदाहरण रामायण का है। भरत रामायण में सबसे निर्दोष पात्र हैं। उनका आदर्श राम से भी ऊंचा है। जब भरत ननिहाल से बुलाये जाते हैं पिता की मृत्यु की बात सुनते ही शोकित हो जाते हैं किन्तु जब रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास की बात सुनते हैं और इसका कारण अपने आपको जानते हैं तो अपने आप को ही दोषी मानकर कोसते हैं—“पिताजी के मरण और श्रीराम-सीता के वनवास का कारण मैं हूँ, मुझे धिक्कार है। मैं रघुवंश रूपी जंगल को जलाने के लिए अग्निरूप में उत्पन्न हुआ हूँ और असह्य जलन, पीड़ा और पाप का भागी बना।”

वे राज्य स्वीकार नहीं करते किन्तु राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं। श्री राम नहीं मानते तो कहते हैं कि भैया, आप वनवास में रहना चाहते हैं तो रहें, किन्तु यह राज्य आपका है, मैं उसका सेवक बनकर सेवा करूँगा। आप अपना राज्य वनवास के पश्चात ले लीजिए। लेकिन यदि वनवास के पश्चात एक दिन की भी देरी हुई तो आप मुझे जिन्दा नहीं पायेंगे।

पारख प्रकाश : जनवरी

रामचन्द्र जी पिता की आज्ञा मानकर राज्य भरत के लिए त्याग देते हैं और भरत श्री राम की आज्ञा से राज व्यवस्था तो देखते हैं किन्तु उसका भोग नहीं करते बल्कि नंदीग्राम में रहकर वनवासी-सा जीवन व्यतीत करते हैं। एक तरफ राम का त्याग है तो दूसरी तरफ भरत का महात्याग है और इस त्याग की वजह से ही भाई-भाई का प्रेम और आदर्श जगत विख्यात है।

यदि स्वार्थ भावना को कम करके एक दूसरे का ख्याल रखा जाये तो पति-पत्नी, भाई-भाई, पिता-पुत्र के बीच में कभी द्वंद्व नहीं होगा और एक आदर्श के साथ सुन्दर जीवन का निर्माण होगा।

. अहंकार छोड़ें—हमारे आपसी सम्बन्धों में कडुवाहट का एक प्रमुख कारण अहंकार का होना है। हम दूसरों से प्रेम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपने अहंकार को छोड़ेंगे। अहंकारी आदमी से सभी दूर भागते हैं। उसको कोई पसंद नहीं करता। विनम्र व्यक्ति को सभी पसंद करते हैं।

*सबते लघुता भली, लघुता से सब होय।*

*जस दूतिया को चन्द्रमा, शीश नावै सब कोय*

(बीजक)

विनम्रता सबसे अच्छी चीज है और विनम्रता से सब काम बन जाते हैं। देखो, दूतिया का चन्द्रमा बहुत छोटा और पतला होता है फिर भी लोग उसे नमस्कार करते हैं।

विनम्र और सरल मनुष्य सबके दिल में अपना स्थान बना लेते हैं और उन्हीं को संसार में आदर प्राप्त होता है। हमें दूसरों का अहंकार पसंद नहीं है तो हमारा अहंकार दूसरों को पसंद कैसे हो सकता है। कहा है—अहंकार का विसर्जन ही अर्चन का द्वार है।

इस प्रकार क्षमा, मधुरवाणी, सेवा-सहयोग की भावना, त्याग भाव, अहंकार का त्याग—ये पांच बातें ऐसी हैं जिनको अपनाने के पश्चात सभी हमारे प्रिय होंगे। हम जिसे चाहें अपना बना सकेंगे। हम खुद अपने आप में संतुष्ट और सुखी होंगे और सबके प्रति हमारी आत्मीय बुद्धि होगी। किसी से कभी शिकवा-शिकायत की आवश्यकता ही नहीं होगी।

## विवेक-पथ

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

सच्चा ज्ञानी भी मना, करें न पूजा-पाठ।  
करते करते ही कभी, खुलती मन की गांठ  
भले मूर्ति पूजें व्रतें, तीर्थ करें स्नान।  
भाव जो उनमें हैं छिपे, उनकी कर पहचान  
यह पूजन प्रारम्भ की, भक्ति का है सोपान।  
ऊपर बढ़ने के लिए, रखें हमेशा ध्यान  
जिनको हम आराधते, जपते जिनके नाम।  
ध्यान करें उस देव का, जो सदगुण सदकाम  
उन गुण कर्मों को स्वयं, जीवन में अपनायें।  
सुख शांति समृद्धि सब, अपने आपे पायें  
नहीं तो पूजन मात्र से, कुछ कोमलता आय।  
शेष सभी वैसे रहे, दुख कभी न जाय  
इस धोखे में मत पड़ें, दर्शन देंगे देव।  
बिन सदगुण सत्कर्म के, पाप करेंगे छेव  
इसी समझ दुर्भाग्य से, जीवन जाता मेट।  
दुःख जाय न हरि मिलें, नहीं सत्य से भेंट  
मूर्ति तीर्थ आकाश में, कभी न कीजै आश।  
राम न ढूँढ़ें बाहरे, सबके दिल में बास  
वही राम थे राम में, रावण में भी राम।  
मान सभी को राममय, तुलसी किये प्रणाम  
योगी जन जिस राम में, रमते हैं दिन रात।  
वही आत्माराम हैं, जो घट सभी लखात  
जिस ईश्वर का अंश यह, जीवात्मा कहलाय।  
मूर्त रूप में ईश वह, कहीं नहीं दिखलाय  
जीवात्मा प्रत्यक्ष है, उसी प्रभु का रूप।  
उसे त्याग कर भटकते, पड़े मोह भ्रम कूप  
जल का अंश जल ही रहे, मिट्टी मिट्टी रूप।  
होकर प्रभु का रूप यह, क्यों नहीं प्रभु रूप?  
कर विवेक सत को समझ, छोड़ सभी भ्रमजाल।  
आत्मदेव का जप करो, हे! अमृत के लाल  
दोष त्याग सदगुण धरें, होय आत्म में लीन।  
पावें शान्ति अमर पद, जन्म-मरण से हीन

पारख प्रकाश : जनवरी

# बीजक चिंतन

## तुम्हारा प्राप्तव्य तुम्हारी हृदय-गुहा में ही विद्यमान है

शब्द-

कबिरा तेरो घर कन्दला में, यह जग रहत भुलाना  
गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना  
सकल ब्रह्म मों हंस कबीरा, कागन चौच पसारा  
मन्मथ कर्म धरे सब देही, नाद-बिन्द बिस्तारा  
सकल कबीरा बोले बानी, पानी में घर छाया  
अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया  
कामिनी रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिन्दा होई  
बड़-बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई  
ब्रह्मा बरुण कुबेर पुरन्दर, पीपा औ प्रहलादा  
हरणाकुश नख वोद्र बिदारा, तिन्ह को काल न राखा  
गोरख ऐसे दत्त दिगम्बर, नामदेव जयदेव दासा  
तिनकी खबर कहत नहिं कोई, उन्ह कहाँ कियो है बासा  
चौपर खेल होत घट भीतर, जन्म का पासा डारा  
दम-दम की कोइ खबरि न जाने, कोइ कै न सके निरुवारा  
चारि दृग महि मण्डल रच्यो है, रूम शाम बिच डिल्ली  
तेहि ऊपर कछु अजब तमाशा, मारो है यम किल्ली  
सकल अवतार जाके महि मंडल, अनन्त खड़ा कर जोरे  
अदबुद अगम औगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे  
सकल कबीरा बोले बीरा, अजहूँ हो हुशियारा  
कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहिं पुकारा

शब्दार्थ—कबिरा=मनुष्य जीव। घर=निवास।  
कन्दला=कंदरा, गुफा। अमहल=बेघर वाले साधु-  
संन्यासी। महल=घर वाले गृहस्थ। मों=में। कबीरा=  
जीव। मन्मथ=काम, काम-वासना। नाद=शब्द, प्राण।  
बिन्द=वीर्य। सकल कबीरा=सब जीव। घट=हृदय।  
कामिनी रूपी मृगा चरिन्दा=कामिनी रूपी चरने वाला  
पशु, तात्पर्य में काम-पशु। पुरन्दर=इन्द्र। दत्त=दत्तात्रेय।  
चौपर=चौसर। पासा=चौसर के खेल में फेंका जाने  
वाला वह चौपहला लंबोतर हड्डी या लकड़ी का बड़ा  
टुकड़ा जिस पर बिंदिया बनी होती हैं। दम-दम=क्षण-  
क्षण। चारि दृग=चार दिशाएं—नाभि, हृदय, कंठ तथा  
त्रिकुटी। महि मण्डल=पृथ्वी मंडल, शरीर। रूम=तुर्की,

पश्चिम, तात्पर्य में पीठ। शाम=श्याम, थाइलैण्ड, पूर्व,  
तात्पर्य में छाती। दिल्ली=भारत की राजधानी, तात्पर्य में  
हृदय। यम=वासना। किल्ली=अज्ञान का खूंटा,  
सिटकिनी, कुंजी। महिमण्डल=पृथ्वी पर। अगम=  
अपार। औगाह=अवगाह, अथाह। बीरा=मन पर विजयी  
संतजन। सिकली=सान चढ़ाने या मांजने की क्रिया।

भावार्थ—हे मनुष्य! तेरा वास्तविक स्वरूप चेतन  
तो हृदय-गुहा में विद्यमान है। तू उसे न समझकर इस  
बाहरी जगत में भूला रहता है कोई गुरु के उपदेशों  
का पालन नहीं करता है। साधु हो या गृहस्थ सब अपने  
आत्मस्वरूप को न समझकर बाहरी कल्पनाओं में  
उन्मत्त हैं सभी जीव मानो मूलतः ब्रह्म एवं  
शुद्धरूप ही हैं। परन्तु उनमें देहोपाधि से विवेक या  
अविवेक के कारण कोई हंस है और कोई काक है। जो  
हंस है वह नीर-क्षीर विवेक करता है और जो काक है  
वह सब कुछ खाने के लिए अपना मुख फैलाता  
है सब जीव सकाम कर्म करके नाना देह धारण  
करते हैं और नाद-बिन्द से अपनी सृष्टि का विस्तार  
करते हैं वैसे सब मनुष्य ज्ञान की बातें करते हैं,  
परन्तु अपने घर छाते हैं पानी में। अर्थात् ज्ञान की बातें  
करते हुए अपने आचरण जगत में डूबने वाले रखते  
हैं इसलिए हृदय के भीतर रहे हुए अनन्त आत्मिक  
धन की लूट हो रही है और जीव अपने घट भीतर का  
हाल नहीं जान पा रहा है कामनारूपी पशु सबके  
हृदय-खेत को चर रहा है बड़े-बड़े शास्त्रज्ञानी  
और श्रेष्ठ मुनि लोग भी थक गये, परन्तु इस कामना-  
पशु को नहीं पकड़ पाये कि इसे वश में कर  
लें ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पीपा, प्रहलाद और  
प्रहलाद को बचाकर अपने नखों से हिरण्यकश्यपु के  
पेट को फाड़कर उसे मारने वाले नृसिंह इन किसी को  
भी काल ने नहीं रहने दिया - और इतना ही  
क्या, गोरख ऐसे महायोगी, दत्तात्रेय दिगम्बर, नामदेव  
तथा जयदेव भक्त, इनका कोई संदेश नहीं बताता है कि  
इन सबने अपने निवास कहां बनाये - सबके  
हृदय में मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार का चौसर-खेल  
हो रहा है और बारम्बार नाना योनियों में भटकने के  
पासे पड़ रहे हैं, अथवा इस खेल में जीव अपने जीवन

पारख प्रकाश : जनवरी

को दाव पर लगाकर उसे हार रहा है क्षण-क्षण हृदय में क्या चक्कर चल रहा है, इसका कोई पता नहीं लगाना चाहता और बिना इस बात को समझ लिये कोई अपना भवबंधनों से छुटकारा भी नहीं कर सकता इस शरीररूपी पृथ्वी मण्डल पर नाभि, हृदय, कंठ तथा त्रिकुटीरूपी मानो चार दिशाएं बनायी गयीं हैं, और जैसे रूम और श्याम के बीच में दिल्ली नगर पड़ता है, वैसे पीठ और छाती के बीच में हृदय-नगर पड़ता है जहां चेतन-सम्राट की गद्दी है परन्तु उसके ऊपर कुछ अजब तमाशा हो गया, वह यह कि वासनारूपी यमराज ने वहां अज्ञान का खूंटा ठोक दिया पृथ्वीमंडल पर जिसके देहधारणरूपी सारे अवतार हैं और अनन्त प्रकृति मानो जिसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी है, और जिसने अद्भुत, अपार और अथाह ज्ञान-विज्ञान का सागर रच डाला है, हे मानव! यह सब तेरी विभूति है, तेरी शोभा है - हे कल्याणार्थियो! मन पर विजयी वीर संतजन सभी मनुष्यों को हित का रास्ता बताते हैं, तुम उनसे निर्देश लेकर आज भी सावधान हो जाओ तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा कबीर साहेब कहते हैं कि गुरुजन रूपी सिकलीगर तुम्हारे हृदय को मांजकर उसे दर्पण के समान स्वच्छ करने के लिए तुम्हें हरदम पुकार रहे हैं, तुम उनकी तरफ ध्यान दो

**व्याख्या—**“कबिरा तेरो घर कन्दला में, यह जग रहत भुलाना।” इस शब्द में एक बार कबिरा तथा चार बार कबीरा कहकर जीव-समूह, विशेषतः मानव-समूह को इंगित किया गया है और छठीं बार में कबीर साहेब ने अपने नाम की छाप लगाते हुए ‘कहहिं कबीर’ कहा है। वे पहली पंक्ति में कहते हैं कि हे कबिरा, हे मानव, तेरा घर तो कंदरा में है। हृदय-गुहा में तेरी चेतना निवास करती है। तू अपनी आत्मा को अपनी हृदय-गुहा में खोज, बाहर क्या भटक रहा है। यह कथन भी भ्रम उत्पन्न कर सकता है। वस्तुतः वह हृदय निवासी तो तू ही है। तेरी अपनी स्मृति अपनी तरफ घूम जाना ही अपनी खोज करना है। तू तो अपने आप को न पहचानकर इस जगत की चमक-दमक एवं तड़क-भड़क में भूल रहा है। यम नचिकेता से कठ उपनिषद्

में कहते हैं—“जो स्वरूप में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और गुणों में महान से भी महान है वह आत्मा सभी प्राणधारियों की हृदय-गुहा में विद्यमान है। उसे ठीक से वही समझता है जो कर्मजाल से छूटा हुआ और शोक से पार है। वह अपने मन की स्वच्छता से अपनी आत्मा में ही महिमावान है।” जो अपने हृदय-मन्दिर के आत्मदेव को जान लेता है, वह संसार में नहीं भटकता।

“गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना।” सच्चे सद्गुरु जो बताते हैं कि तू अपनी आत्मा को पहचान, इस आदेश का पालन कोई नहीं करना चाहता। मनुष्य अपने अविनाशी स्वरूप को न पहचानकर ही दीवाना बना भटक रहा है। अमहल और महल, अर्थात् बे-घर तथा घर वाले सब बाहर से परमात्मा, मोक्ष एवं निर्वाण पाने के लिए पागल हैं। बे-घर साधु-संन्यासी हैं तथा घर वाले गृहस्थ हैं। जैसे गृहस्थ भटक रहे हैं, वैसे साधु-संन्यासी भी भटक रहे हैं। बाहर से मोक्ष और परमात्मा पाने का पागलपन गृहस्थ-विरक्त सबको भटका रहा है।

“सकल ब्रह्म मों हंस कबीरा, कागन चोंच पसारा।” सकल कबीरा मानो ब्रह्म हैं। अर्थात् सब जीव स्वरूपतः शुद्ध-बुद्ध हैं। जीव का मौलिक स्वरूप ही ब्रह्म है, महान है, निर्मल है। परन्तु देहोपाधि से उनमें कोई हंस है तथा कोई कौआ है। सभी जीव का मौलिक स्वरूप शुद्ध है, परन्तु देहधारी होने के नाते वे जैसे अपने मनोभाव एवं आचरण रखेंगे वैसे उनके हंस या काकरूप सामने आयेंगे। जो जड़-चेतन का विवेक करेगा, खाद्याखाद्य, ग्राह्य-त्याज्य, राग-विराग, बंध-मोक्ष, दुर्गुण-सद्गुण का अलग-अलग विचारकर नीर त्यागकर क्षीर ग्रहण करेगा वह हंस है, विवेकी है। जिसका आहार शुद्ध है, जो राग-द्वेष और दुर्गुणों को त्यागकर सद्गुण में रमता है, जो जड़ासक्ति छोड़कर निजस्वरूप चेतन में स्थित है वह हंस है। परन्तु जो व्यक्ति काक-बुद्धि का है, वह तो सब कुछ खाने के लिए अपनी चोंच फैलाता है। उसके लिए न कुछ विधि

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः

(कठ उपनिषद् / / )

पारख प्रकाश : जनवरी

है और न निषेध है। उसे न जड़-चेतन का भिन्न विवेक है और न वह विषयों को छोड़कर अविनाशी पद समझता है। उसके लिए सब धान साढ़े बाइस पसेरी है। उसे विवेक-विचार एवं सदाचार से क्या लेना-देना!

“मन्मथ कर्म धरे सब देही, नाद-बिन्द बिस्तारा।” मन्मथ कहते हैं काम को और देही का अर्थ है देहधारी जीव, जो देह को धारण करता है, परन्तु कविता में देही का अर्थ देह भी होता है। एक में अर्थ होगा सब देहधारी जीव सकाम कर्म धारण करते हैं और दूसरे में अर्थ होगा कि सकाम कर्म से सब जीव देह धारण करते हैं। अतएव मूल भाव में अन्तर नहीं है। जीव सकाम कर्मवश ही देह धारणकर भटक रहे हैं, या यों कहिए कि मनुष्य सकाम-कर्मवश ही नाना लालसाओं के कारण संसार में भटक रहे हैं। “नाद-बिन्द बिस्तारा” नाद-बिन्द का सरल अर्थ है प्राण और वीर्य। जीव इन्हीं उपादानों से शरीर धारण करता है। जीव निमित्त कारण है, सकाम कर्म साधारण कारण है तथा प्राण-वीर्य उपादान कारण हैं। इन्हीं सबसे शरीर-रचना का विस्तार होता है। “नाद-बिन्द बिस्तारा” को एक ढंग से ऐसा भी समझा जा सकता है कि नाद का अर्थ शब्द है। शब्दों द्वारा उपदेश करके धार्मिक क्षेत्रों में शिष्यों का विस्तार होता है तथा बिन्द वीर्य है उससे गृहस्थी में बाल-बच्चों को पैदा करके उसका विस्तार होता है। वैसे पहले वाला अर्थ ही यहां अधिक उपयुक्त है।

“सकल कबीरा बोले बानी, पानी में घर छाया।” सभी जीव ज्ञान की बातें बोलते हैं, परन्तु अपने घर छाते हैं पानी में। “पानी में घर छाया” बहुत बड़ा व्यंग्य है। हम ज्ञान की बातें तो करते हैं, परन्तु अपने जीवन के आचरण ऐसा करते हैं जिससे अपना पतन हो। कोई अपना मकान पानी में बनायेगा तो वह कब तक टिकेगा! जिसके पेंदा में छेद-ही-छेद है वह डूबेगा ही। ज्ञान की बातें कहना मात्र पर्याप्त नहीं है, किन्तु उनके अनुसार आचरण करने की महती आवश्यकता है।

“अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया।” सबके भीतर रहने वाली उसकी अनन्त एवं अविनाशी आत्मा है, वह काम-क्रोधादि डाकुओं द्वारा लूटी जा रही है। यहां अनन्त में श्लेष है। हम यहां के

‘अनन्त’ शब्द को जीव का स्वरूपवाची भी मान सकते हैं तथा लूट का विशेषण भी। दोनों भावों में मुख्य अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता। एक में अर्थ होगा कि हमारी अनन्त आत्मा लूटी जा रही है और दूसरे में अर्थ होगा कि हमारी आत्मा की अनन्त लूट हो रही है। अर्थात् वह हर तरह से लूटी जा रही है। यह जो क्षण-क्षण काम, मोह, देहाभिमान, द्वेष, क्रोध, लोभ, चिन्ता, शोक आदि हमारी अन्तरात्मा को मलिन करते रहते हैं यह मानो हमारी अनन्त आत्मा की लूट हो रही है। अथवा हमारी आत्मा अनन्त प्रकार से लूटी जा रही है। परन्तु “घट का मर्म न पाया” हम अपने घट का मर्म नहीं जान पाते। हमें हृदय में होने वाली क्षण-क्षण की लूट के रहस्य का पता नहीं लगता। इतनी हमारी असावधानी है। हम जिस घर में रहते हों उसी घर में क्षण-क्षण लुटेरे घुस-घुसकर हमारे माल-टाल की लूट मचा रहे हों और हमें इसका पता ही न लगे तो इससे अधिक हमारी अचेती क्या होगी! हमारे हृदय-मंदिर में जो कामादि डाकू हमारे ज्ञान तथा शांति-धन को लूटते हैं हम उससे जीवनभर अनभिज्ञ बने रहते हैं। इससे अधिक दुख की बात क्या होगी! इसलिए साधक को चाहिए कि वह सब समय अपने हृदय को देखे। जो अपने मन का सब समय साक्षी बना रहता है, वही सच्चा साधक है। जो हृदय-घर की सदैव निगरानी रखता है, उसके दिल में चोरी नहीं होगी। सतत सावधानी ही साधना है। जो हर समय अपने मन को देखता है, उसका मन चालबाजी नहीं कर पाता। इसलिए साधक को चाहिए कि वह आवश्यक काम करते हुए सब समय साक्षी-भाव से रहे। मन को देखता रहे कि वह क्या कर रहा है। जो सावधान होकर सदैव मन को देखता रहेगा उसका हृदय स्वच्छ रहेगा।

“कामिनी रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिन्दा होई।” सकल कबीरा अर्थात् सभी मनुष्य जीवों को कामिनी रूपी मृगा चर रहा है। कामिनी का अर्थ है काम-वासना। यह एक ऐसा पशु है जो चरिन्दा है, चरता है। मनुष्यों के हृदयरूपी खेत के ज्ञान और शांति-फसल को कामवासना रूपी पशु निरन्तर चर रहा है। यदि खेत की फसल को पशु बराबर चरते रहें, तो फसल होना असंभव है। इसी प्रकार जिसके हृदय में काम-वासनाएं



बराबर बनी रहती हैं उसके हृदय में कहां ज्ञान की स्थिति होगी और कहां शांति होगी।

“बड़-बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई।” शास्त्रों के बड़े-बड़े ज्ञानी तथा बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इस पशु को पकड़ने का प्रयत्न किये कि इसे पकड़कर बांध दें जिससे फसल की रक्षा हो, परन्तु कोई पकड़ न सका। लोग इस कामना-पशु के पीछे दौड़ते-दौड़ते स्वयं थककर गिर पड़ते हैं, परन्तु इसे पकड़ नहीं पाते। इस कामना-पशु का एक रूप नहीं है। इसके अनेक रूप हैं। यह अपनी शक्ति बदलने में माहिर है। काम-वासना का मतलब केवल स्त्री-पुरुष के अंग-मिलन की चाह ही नहीं है। यह तो है ही। यह तो बहुत मलिन है। परन्तु इसके अलावा बाहर से कुछ भी पाने की कामना, कामना ही है। अपने चेतन को छोड़कर, अपनी आत्मा से हटकर हम जो कुछ पाने की कामना करते हैं, वह मानो मन का भटकाव है। यदि हम किसी विषय से सुख पाना चाहते हैं, तो कामना है, बाहर से ईश्वर या मोक्ष पाना चाहते हैं तो कामना है। हम स्थूल विषयों की मलिनता से अपने आप को मुक्त भी कर लेते हैं, परन्तु इसके बाद यदि बाहर से ईश्वर या मोक्ष पाना चाहते हैं, तो मानो कामना-रूपी पशु के द्वारा हमारा हृदय-खेत चरा जा रहा है। इसीलिए साहेब कहते हैं कि बड़े-बड़े ज्ञानी और मुनि भी थक गये, परन्तु कामना-पशु को पकड़ नहीं सके। उसे पहचानकर उससे मुक्त नहीं हो सके। ज्ञानी और मुनिजन समझते हैं कि हमने विषयों का त्याग कर दिया, अब केवल परमात्मा के दर्शन की भूख रह गयी है। अब तो हम कामनाओं से मुक्त हैं। परन्तु हमें समझना चाहिए कि यदि परमात्मा अपनी आत्मा से अलग है और उसके दर्शन होते हैं तो वह भी विषय है। निज चेतनस्वरूप के बाद सब विषय है। इस प्रकार कामना-पशु का बड़ा सूक्ष्म रूप है। इसे पकड़ पाना, इसे वश में कर पाना बड़ी परख की बात है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं—

ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इंद्र, पीपा, प्रह्लाद, नृसिंह, गोरख, दत्तात्रेय दिगंबर, नामदेव, जयदेव या इसी लाइन में और भी जितने नाम गिना लें, यदि ये सब अपनी स्वरूपस्थिति एवं आत्मस्थिति के अलावा भी ऋद्धि-सिद्धि, ईश्वर-मोक्ष आदि कुछ चाहते रहे तो ये मानो

कामना-पशु के पीछे दौड़ते रहे।

यहां जो ब्रह्मादि कई नाम गिनाये गये हैं और इन्हें काल के अधीन बताया गया है और यह कहा गया है कि “तिनकी खबर कहत नहिं कोई, उन्ह कहाँ कियो है बासा।” इसमें दो अर्थ हैं। पहला तो यह है कि इनमें से किसी के प्रति जो देवता एवं अतिमानव होने की कल्पना है उसका खंडन है। कबीर साहेब मानव के अलावा कोई देवता नहीं मानते, और यही तथ्य है। यह देववाद तथा अतिमानव की कल्पना ही सारी भ्रांतियों की जड़ है। साहेब कहते हैं कि ब्रह्मा हों या वरुण, कुबेर हों या इंद्र और चाहे हिरण्यकश्यपु के पेट को अपने नख से फाड़ने वाले नृसिंह ही क्यों न हों, यदि ये सब देहधारी थे, तो मानव से बढ़कर ये कुछ नहीं थे। इनकी भी एक दिन मौत हो गयी होगी, अन्यथा ये आज दिखाई देते। गोरखनाथ जी को लोग अमर कहते हैं। साहेब कहते हैं यह भी गलत है। जो एक दिन देह धारण करता है, वह एक दिन अवश्य मरता है। यह समस्त देहधारियों के लिए प्रकृति का अकाट्य नियम है। इसके अलावा ये ब्रह्मादि तथा पीपा, प्रह्लाद, दत्त, दिगंबर, नामदेव, जयदेव आदि यदि अपनी आत्मा से अलग किसी ईश्वर-परमात्मा को पाने की कामना अपने मन में बनाये रखे हों तो ये कामना-पशु के द्वारा मानो चरे जा चुके हैं। इसका पता कौन बताये कि ये किस ईश्वर के पास किस लोक में जाकर निवास पाये! लोग कहते हैं कि प्रह्लाद बैकुण्ठधाम को चले गये तथा अन्य भक्त लोगों में से कोई ब्रह्मलोक, कोई गोलोक, कोई शिवलोक आदि में गये। साहेब कहते हैं कि यह खबर तुम्हें कैसे मिली? यह सब कामना-पशु का राज्य है। ज्ञानी के लिए केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह जीवनकाल में ही चेतनस्वरूप में स्थित हो गया, वह अपने आत्माराम में लीन हो गया, और जो आज सारी वासनाओं को छोड़कर स्वरूपस्थ एवं आत्मस्थ है, वह मानो सदैव के लिए स्वरूपस्थ एवं आत्मस्थ है, क्योंकि उसकी कामनाएं सर्वथा मिट गयी हैं। जब कोई कामना नहीं हो तो कहीं आना-जाना नहीं। इसके अलावा कुछ नहीं कहा जा सकता।

“चौपर खेल होत घट भीतर, जन्म का पासा डारा। दम दम की कोई खबरि न जाने, कोई कै न सकै

निरुवारा।” सबके हृदय में चौपड़ का खेल हो रहा है। लोग कपड़ा बिछा लेते हैं। उस पर गोट या पासा फेंककर खेल खेलते हैं। खेल में जीतते हैं या हारते हैं। हड्डी या लकड़ी का एक लंबा तथा चौपहला टुकड़ा होता है। जिस पर बिंदियां बनी रहती हैं। उसे पासा कहते हैं। उसे फेंक-फेंककर चौपूर एवं चौसर खेलते हैं। इसमें रुपये-पैसे या अन्य प्रकार के धन दांव पर लगाते हैं। यही जुआ कहलाता है। इसी जुआखेलाई में तो कौरवों तथा पांडवों का विध्वंस हुआ था। इस चौसर एवं जुआ में हारने तथा जीतने वाले दोनों मानो अपने जीवन को हारते हैं।

साहेब कहते हैं कि सबके घट के भीतर, सबके दिल में एवं हृदय में चौपड़ खेल हो रहा है और वह खेल अनवरत होता है। इस चौसर में हृदय मानो बिसात अर्थात् फैलायी हुई चदर है; मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार का चौपहला पासा है। इस पासे को फेंक-फेंककर मनुष्य अपने पूरे जन्म को एवं जीवन को दांव पर लगा देता है। मनुष्य अपना पूरा जीवन मन के खेल में लगा देता है। वह क्षण-क्षण मन से विषयों का स्मरण करता है, चित्त से उनका अनुसंधान करता है, बुद्धि से उन्हीं में सुख निश्चय करता है तथा अहंकार से उन्हीं की करतूति करता है। वस्तुतः एक ही अंतःकरण विषयों का सरल चिन्तन करता है तब मन की अवस्था है, वह जब विषयों की गहराई में उतरता है तब चित्त की अवस्था है, जब उनमें सुख निश्चय करता है तब बुद्धि की अवस्था है और जब उनके भोगों में प्रवृत्त होता है तब अहंकार की अवस्था है। इस प्रकार मनुष्य के घट-भीतर यह चौसर, यह जुआ, यह पासे का फेंकना चला करता है, और आदमी अपने जीवन को, अपने सर्वस्व को उसके साथ हारता रहता है। मन के बहकाव में चला जाना ही मानो अपने जीवन को, अपने सर्वस्व को हार जाना है। “जन्म का पासा डारा” का यही अर्थ है कि मनुष्य ऐसा पासा फेंकता है जिसमें अपने जीवन को हार जाता है। इसी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि जीव नाना योनियों में भटकने के लिए ही मानो यह पासा फेंकता है। यदि जीव विषयों के चिन्तन ही में रहेगा तो योनियों में भटकता ही रहेगा।

“दम दम की कोई खबरि न जाने, कोइ कै न सकै

निरुवारा।” दिल के भीतर क्षण-क्षण क्या घटना घट रही है इसका किसी को पता नहीं है। आदमी हर समय अपने दिल को लेकर ही जीता है, परन्तु दिल में क्या-क्या हो रहा है इसकी खबर उसे नहीं है। जब तक घर के भीतर का झगड़ा न जाना जाये तब तक उसका निपटारा भी कैसे किया जा सकता है! जो लोग रात-दिन मन की धारा में बहते हैं उनकी तो बात ही छोड़िये, जो मन को देखने का प्रयास करते हैं, वे भी समय-समय से मन को देखते-देखते उसमें इस ढंग से बह जाते हैं कि उनको पता भी नहीं लगता कि हम कब बह गये और कहां गये। मन की वासनाएं बड़ी सूक्ष्म होती हैं। जो सतत सावधान रहता है वही इससे बचता है। वस्तुतः मन की धारा से उबरने के लिए वैराग्य और अभ्यास दोनों चाहिए। संसार-शरीर की नश्वरता और दुखरूपता का सदैव भान रहना वैराग्य है और मन का साक्षी बनकर उसे शांत करते रहना अभ्यास है। इसमें वैराग्य प्रबल साधन है। मन में तीव्र वैराग्य आने से हृदय की हलचल अपने आप शांत हो जाती है। साधक को चाहिए कि वह सदैव विषयों के प्रति अनासक्ति रूपी वैराग्य तथा मन का साक्षी-भावरूप अभ्यास को जाग्रत रखे।

साधक वही है जो अपने दिल को सदैव देखता है। विशाल देव ने कहा है—“जो सद्बुद्धिमान तथा गुणग्राही है वह अपने दिल को देखता है कि हमारे दिल-घर में क्या-क्या काम हो रहा है। हृदय में स्ववशता, स्वतन्त्रता एवं निर्विषय स्वरूपस्थिति का राज्य है या विषय-वासनाओं की प्रबलता एवं जीव की विवशता का जोर है। सच्चा साधक विषय-वासनाओं के वश होना मौत से अधिक दुखद समझता है। इसलिए वह सदैव निर्विषय एवं स्ववश होने के लिए प्रयत्नवान रहता है। वह अन्य सारे काम छोड़कर रात-दिन इसी लक्ष्य में तत्पर रहता है कि हमारा मन, हमारा हृदय सब समय निर्विषय एवं स्ववश रहे।”

सद्बुद्धी गुणग्राह्यता, देखै अपनी ओर।  
क्या क्या दिल घर काम हो, स्ववश विवश कर जोर  
विवश मरण से अधिक लखि, स्ववश हेतु परियल।  
निश दिन तत्पर याहि में, और तजै सब यल  
(मुक्तिद्वार, शांतिशतक - )

पारख प्रकाश : जनवरी

“चारि दृग महि मण्डल रच्यो है, रूम शाम बिच डिल्ली। तेहि ऊपर कछु अजब तमाशा, मारो है यम किल्ली।” यह शरीर मानो महि-मण्डल अर्थात् भूमंडल है। भूमंडल पर चार दिशाओं की कल्पना होती है जिन्हें पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण कहते हैं। इस शरीररूपी भूमंडल पर नाभि, हृदय, कंठ तथा त्रिकुटी ही मानो चार दिशाएं हैं। हमारे भारतवर्ष की राजधानी बहुत दिनों से दिल्ली है। वहीं हमारे देश का बादशाह रहता है। हमारे देश की राजधानी दिल्ली रूम और श्याम के बीच में है। रूम है तुर्की जो दिल्ली से पश्चिम है और श्याम है आजकल का थाइलैंड जो दिल्ली से पूर्व है। इस प्रकार रूम और श्याम के बीच में दिल्ली है। इस शरीररूपी भूमंडल पर पीठ रूम है तथा छाती श्याम है और दोनों के बीच में हृदय दिल्ली है, जहां इस शरीर-देश के बादशाह-चेतन की गद्दी है। साहेब कहते हैं, परन्तु इस हृदय-दिल्ली में कुछ अजब तमाशा हो गया है। यहां पर यम ने किल्ली गाड़ दी है। यम वासना है और किल्ली अज्ञानरूपी खूंटा है। इन सारे अलंकारों के जंजाल को हटाकर अर्थ बढ़ा सरल है कि इस मनुष्य-शरीर के हृदय में ही चेतन-सम्राट एवं आत्मदेव निवास करता है, परन्तु हृदय में उसका राज्य न रहकर वासना एवं अज्ञान का राज्य है। जीव हृदय में रहता अवश्य है, परन्तु वह वासना के अधीन है। उसका हृदय चेतन की स्ववशता में न रहकर विषयों की विवशता में रहता है। यही अजब तमाशा है। यही उलटा खेल है।

प्रश्न होता है कि क्या चेतन-सम्राट अपने स्वरूपस्थिति-राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता? क्या वह वासनाओं से मुक्त नहीं हो सकता? साहेब कहते हैं कि बिलकुल हो सकता है, क्योंकि यह जीव महान समर्थ है। साहेब इस चेतन की प्रशंसा में कहते हैं “सकल अवतार जाके महि मण्डल, अनन्त खड़ा कर जोरे। अद्बुद अगम औगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे।” हे जीव! इस पृथ्वी मंडल पर सारे अवतार तुम्हारे ही हैं। अनादिकाल के दौरान में पृथ्वी पर जो भी देहधारण हुआ है वह तेरी ही तो विभूति है। तू ही तो व्यास हुआ, वसिष्ठ हुआ, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर हुआ, तू ही जरथुस्त्र, लाओत्जे, मूसा और ईसा हुआ, तू ही सुकरात

और मुहम्मद हुआ। यह प्राणियों का जन्म ही तो अवतार है। कबीर साहेब वैसा अवतार नहीं मानते कि कोई सुप्रीम पावर है और वह ऊपर से उतरता है। कबीर साहेब के ख्याल से सारे प्राणी ही मानो अवतार हैं। उनमें मनुष्य की मुख्य भूमिका है। संसार में जो बड़ी-बड़ी विभूतियां हुई या होती हैं, अन्य मनुष्य भी मूलतः उन्हीं के समान हैं। ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का विलक्षण-विलक्षण अनुसंधाता आखिर कौन है? यह मनुष्य ही है। यही अद्भुत, अपार और अथाह ज्ञान-विज्ञान का जनक है। इस जड़-प्रकृति क्षेत्र में जिसने ज्ञान-विज्ञान की हलचल मचा रखी है वह यह मनुष्य जीव ही है। सद्गुरु कहते हैं कि हे मनुष्य! यह सारा ज्ञान-विज्ञान तेरी शोभा है, तेरी विभूति है। तूने ही वेद बनाये, बाइबिल बनायी, कुरान बनाया और हजारों धर्मग्रन्थ बनाये। तूने ही व्याकरण, संगीत, नृत्य तथा प्रकृति-शक्ति के ज्ञान-विज्ञान के हजारों आयाम खोले। तूने ही ईश्वर, अवतार, पैगंबर, देवी-देवता तथा स्वर्ग-नरक की कल्पना की। तू न होता तो ज्ञान-विज्ञान का नामोनिशान न होता। चन्द्रमा भी एक पृथ्वी है। वहां तू नहीं है, तो वहां कहां ज्ञान-विज्ञान है! इसलिए ज्ञान-विज्ञान का तू ही मूल है। तेरे सामने यह अनन्त प्रकृति मानो हाथ जोड़कर खड़ी है। तू इसका भोक्ता एवं द्रष्टा है। यह जड़ दृश्य है। अतएव तू ऐसा महान होकर अपने आप को वासनाओं से मुक्त क्यों नहीं कर सकता है! सारी वासनाएं, सारी आदतें तेरी रची हैं इसलिए तू इन सबको एकदम छोड़ सकता है। तू वासनाओं को त्यागकर ही हृदय-दिल्ली का बादशाह हो सकता है। बाहरी देश का बादशाह तो बेचारा वासनाओं में फंसा दीन है। असली बादशाह तो वही है जो वासनाओं से सर्वथा मुक्त है।

“सकल कबीरा बोले बीरा, अजहूँ हो हुशियारा।” हे सकल कबीरा! हे सम्पूर्ण मनुष्यो! वासना-विजयी संतजन तुम्हें ज्ञान की बातें समझा रहे हैं। वे तुम्हें अपने उच्चादर्श से तथा वाणी से—दोनों से प्रेरित कर रहे हैं। इन वासना-विजयी-वीर संतों की आवाज सुनकर तो तुम्हें जग जाना चाहिए। आचरणहीन वक्ताओं का कोई प्रभाव न पड़े तो यह स्वाभाविक-सी बात है, परन्तु जो

वीर हैं, जिन्होंने अपने मन की सारी वासनाओं को जीत लिया है, ऐसे संतों के वचनों से, आचरणों से तो प्रेरणा लेनी चाहिए। तुम ऐसे संतों से प्रेरणा लो और आज ही होशियार हो जाओ, सावधान हो जाओ। तुम्हारे दिल की वासनाएं ही तुम्हें रात-दिन लूट रही हैं। तुम रात-दिन अन्दर-ही-अन्दर लूटे जा रहे हो। अतएव इन अन्दर के लुटेरों से सावधान हो जाओ।

“कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहिं पुकारा।” कबीर साहेब कहते हैं कि गुरु सिकलीगर होते हैं। वे निर्णय-विवेक के सान पर शिष्य के मैले-मन को मांजकर उसे दर्पणवत स्वच्छ बना देते हैं। पत्थर की एक चक्की होती है उसे ‘सान’ कहते हैं। उसको घुमाते हैं और पर उस्तरा आदि लोह के औजार रखकर मांजते हैं। मांजने को ‘सिकली’ कहते हैं और जो मिखी मांजता है उसे ‘सिकलीगर’ कहते हैं। यहां निर्णय-विवेक मानो ‘सान’ है, सद्गुरु ‘सिकलीगर’ हैं और उनका निर्णय-विवेक द्वारा शिष्य को बोध देना मानो ‘सिकली’ करना एवं मांजना है। कबीर साहेब कहते हैं कि सद्गुरु तो तुम्हें हरदम पुकार रहे हैं, वे हरदम तुम्हें अपनी ओर खींचते हैं। तुम्हीं ऐसे जड़मति हो गये हो कि उनकी पुकार सुन नहीं रहे हो। तुम गुरु की आवाज की तरफ ध्यान दो, निश्चित ही तुम्हारा बेड़ा पार होगा।

सद्गुरु ने इस शब्द में पूरे मानव समाज को संबोधित कर यह समझाने का प्रयास किया है कि मनुष्य का प्राप्तव्य उसका निज चेतनस्वरूप है, आत्मदेव है और वह उसकी हृदय-गुहा में सब समय विद्यमान है। परन्तु मनुष्य अपने उस दिव्य स्वरूप को नहीं समझता है, इसलिए वह सकाम कर्मों में लिपटा वासना का शिकार बना रहता है। उसके हृदय में चेतन का साम्राज्य होना चाहिए, परन्तु अज्ञानवश वासना का साम्राज्य बना रहता है। मनुष्य में महान बल है। उसे अपने बल की याद करनी चाहिए। उसे वासना-विजयी संत-गुरुजन जगाते हैं। इसलिए उनसे प्रेरणा लेकर और अपने स्वरूप को पहचानकर समस्त जड़-वासनाओं को जीत लेना चाहिए। और इसी जीवन में सम्राट हो जाना चाहिए। जो वासना-विजयी है वही सम्राट है।

## डॉ. राममिलन की कविताएं

**काल मृत्यु नहीं, बल्कि हमारी वासनाएं हैं**  
इच्छा विष है, इस जीवन में, जो बोध कराती बार-बार।  
तुम उसको बस दरिद्र समझो, जिसकी इच्छा हो, धन अपार  
सुख की इच्छा जिनको होती, दुख बोध कराती है उनको।  
अपमान उसी का होता है, सम्मान की इच्छा है जिसको  
है राग जिसे भय उसको ही, वैराग्य जिसे वह निर्भय है।  
है सत्य, प्रेम बस उसको ही, जिसका निर्मल मन हृदय है  
जिसने इच्छाओं को त्यागा, जग उसने ही अमृत पाया।  
मेरा-तेरा सब भूल गया, और प्रेम दशों दिशा फैलाया  
यह मृत्यु काल है नहीं, समझ, है काल वासना बस तेरी।  
तू मान न मान तेरी मरजी, है यही समझ में अब मेरी

### जितना हो सके मौन रह लो

जितना हो सके मौन रह लो, बड़बोलापन दुख देता है।  
जो बोलो अमल करो उस पर यह सचमुच मुश्किल होता है  
ब्रत एक मौन रहना भी है, जितना हो सके निबाहो तुम।  
है भीड़ बोलने वालों की, उस भीड़ में न हो जाओ गुम  
अब तक मैं बहुत बोलता था, औरों को खूब सिखाता था।  
जब स्वयं को मैंने जाना तो, तब भला मुझे क्या आता था  
बोलूंगा बस उतना ही अब, जितने खुद का निस्तारा हो।  
उपदेश न दूंगा अब सबको, न जब तक स्वयं बिचारा हो  
बड़बोलेपन से ऐ भाई, जग बैरी, बड़ बन जाते हैं।  
कल्याण किसी का, न बोले, सब अपनी स्वयं नशाते हैं

### मन को बस निर्मल कर अपने

इस काया को मत सुन्दर कर, यह काया पल-पल बदल रही।  
मन को बस निर्मल कर अपने, है बात एक बस यही सही  
खुद सोच जन्मा तो बच्चा था, कुछ समय बीत हो गया जवान।  
बूढ़ा शरीर तो होना तय, होगा इसका एक दिन निर्वाण  
बस करना तुझको एक काम, करनी को अपने सुन्दर कर।  
क्या लाया था, संग अपने तू, क्यों आज तूझे है पड़ी फिकर  
तू फिकर छोड़ निर्भय हो जी, दे तोड़ सभी बन्धन को अब।  
अनहद में रहने वाले को, कोई रोक सका है आखिर कब  
आया जो, जाना निश्चित है, फिर आखिर इसका राग हो क्यों।  
तू मान न मान तेरी मरजी, मिट्टी में मिलना ज्यों का त्यों

# आओ खुद में ढूँढ़ें खुशियां

लेखक—डॉ. दीपक चोपड़ा

खुश होना है तो एक नई सुबह ही काफी है। लेकिन बहुत-से लोग इनमें ऐसा कोई जादू नहीं देख पाते। वे खुश होने के लिए प्रतीक्षारत रहते हैं, लेकिन खुशी नहीं मिलती। दरअसल वे नहीं जानते कि खुशी को खुद में ही खोजना होगा। खुद में कुछ बदलाव लाने होंगे। नतीजा मिलेगा कि प्रसन्न मन रहने वाले आप अपने आसपास के माहौल को भी प्रसन्नता की संजीवनी बांटेंगे। प्रसन्नता के मेरे कुछ मंत्र इस तरह हैं—

## रिश्तों को बनायें आड़ना

खुशी चाहिए तो खुद को समझना बहुत जरूरी है। इतना समझ लें कि बाहर की दुनिया में हम जिन चीजों को अहमियत देते हैं, वे दरअसल हमारे अंतरतम की सच्चाई बयां करती हैं। हम जिनसे सबसे ज्यादा नफरत या प्यार करते हैं, वे लोग हमारे इच्छित व्यक्तित्व का आईना होते हैं। यदि किसी का कोई गुण हमें अच्छा लगता है, तो इसलिए कि वह हम खुद में देखना चाहते हैं। हमें अपने जीवन से क्या चाहिए, यह जानने के लिए हमें रिश्तों के आईने का इस्तेमाल करना चाहिए, ताकि उनके माध्यम से आप अपने आदर्शों और भावनाओं को समझ सकें। इस राह पर आगे बढ़ेंगे, तो जिन गुणों को आप पसंद नहीं करते, वे व्यक्तित्व से गायब हो चुके होंगे और बिना प्रयास किये ही इच्छित गुण आपके व्यक्तित्व का हिस्सा होंगे। नतीजा यह कि आप खुद को प्यार करने लगेंगे और खुश रहने लगेंगे।

## दिलों को जोड़ती है माफ़ी

यह सही है और वह गलत। लोगों और उनके व्यवहार को सही-गलत के खांचे में फिट करने की आदत बहुत तनाव देती है। मन को प्रफुल्लित रखना है, उसे उन्मुक्त होकर खुले आकाश में उड़ने देना है, तो राय बनाने की आदत से बाहर आना होगा। दूसरों के प्रति राय बनाने की आदत, इसका संकेत है कि आपको खुद पर विश्वास नहीं है। याद रखिये, जब आप किसी को माफ़ करते हैं, तो आपके स्वाभिमान और नतीजतन प्रेमभाव में बढ़ोत्तरी होती है, सुरक्षा की भावना बढ़ती है और आशंकाएं मिटती हैं।

## सेहत का नगीना

हमारा मन कितना प्रसन्न अनुभव कर रहा है, इस पर शरीर की दुरुस्तगी खास असर करती है। शरीर की हरेक कोशिका को अपनी खुशहाली का केन्द्र मानिए और स्वास्थ्य में जहर घोलने से बाज आर्यें। खुश रहना है, तो अपनी सेहत का ख्याल रखें। जिन चीजों का शरीर पर दुष्प्रभाव हो, उससे दूर रहें, फिर चाहे वह भोजन का हिस्सा हो, पेय पदार्थ हों या बुरे अनुभव। सेहत का नगीना चमकेगा, तो मन में खुशी का उजाला रहेगा।

## मन में जगायें सुरक्षा का भाव

जीवन में हम जो भी करते हैं, उसकी प्रेरणा भय है या कि प्रेम, यह प्रसन्नता को प्रभावित करता है। भय स्मृति से उत्पन्न होता है और स्मृति हमारे अतीत की देन होती है। जब हम किसी चिंता के वशीभूत होकर कुछ करते हैं, तो इसका मतलब अतीत हमारे वर्तमान पर हावी है। इस तरह बुरे अनुभवों की यादों को हम कभी मिटा नहीं पायेंगे। जिन लोगों में सुरक्षा की भावना होती है, उनकी प्रेरणा भय नहीं, प्रेम होता है। इसके लिए अंतरात्मा की सच्चाई को हथियार बनायें। अंतरात्मा की प्रेरणा आपको अंदर से मजबूत बनाती है और आप चिंतामुक्त रहते हैं।

## संतुलन की दुनिया

यह संसार बुद्धि का आईना है। एक ऐसी निराकार बुद्धि, जो संसार के सारे तत्त्वों और ऊर्जा को एक साथ बखूबी चला रही है। चूंकि बुद्धि आपका भी गुण है, इसलिए ब्रह्मांड को संभालने वाली इस ताकत का एक हिस्सा आप भी हैं। इस संसार में हम सब एक-दूसरे से जुड़े हैं, इसलिए संसार के हवा, पानी, जमीन को नष्ट-भ्रष्ट न करें। साथ ही अपने अंतरतम को भी नकारात्मकता के जहर से दूर रखें। शुद्धता और संतुलन जगत और आपकी खुशहाली के लिए जरूरी है।

(साभार : हिन्दुस्तान, अक्टूबर, )

पारख प्रकाश : जनवरी

# शंका समाधान

प्रश्न—स्वरूपदास, देवरिया उ.प्र.

. प्रश्न—गायत्री मंत्र का अर्थ क्या है और इसमें किसकी उपासना बतायी गयी है?

उत्तर—वेदों में गायत्री, जगती, पंक्ति, बृहती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, उष्णिक, शक्करी आदि अनेक प्रकार के छंद हैं। इन छंदों का निर्धारण मात्रा (अक्षर) के आधार पर होता है। गायत्री छंद में चौबीस अक्षर होते हैं। इसमें आधे अक्षरों को नहीं गिना जाता है। वेदों में हजारों की संख्या में गायत्री छंद हैं। जो सर्वाधिक प्रसिद्ध गायत्री मंत्र है, वह इस प्रकार है—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

यह मंत्र ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बासठवें सूक्त का दसवां मंत्र है और ऋषि विश्वामित्र की रचना है तथा इसमें सविता (सूर्य) की प्रार्थना की गयी है। वेदों के विभिन्न भाष्यकार इसका अपने-अपने ढंग से अर्थ-व्याख्या करते हैं। परंतु इसका अक्षरशः अर्थ इस प्रकार है—हम उस सविता देवता का ध्यान धारण करते हैं जो वरण करने योग्य एवं प्रकाश स्वरूप है और जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद ( / / ) के भाष्य में लिखा है—उदयात्पूर्वभावी सविता उदयास्तमयवर्ती सूर्यः। अर्थात् उदय के पूर्व सविता कहलाता है और उदय से अस्त तक सूर्य।

ऋग्वेद ( / / ) में जहां यह मंत्र है वहां इसमें 'ॐ भूर्भुवः स्वः' नहीं है। यह इसमें बहुत बाद में जोड़ा गया है।

ऋग्वेद के उक्त स्थल में इस मंत्र में सविता (सूर्य) का ध्यान करने एवं उससे प्रेरणा लेने की ही बात कही गयी है। कालांतर में जब यह मंत्र द्विजातियों की दीक्षा में प्रयुक्त होने लगा तब धीरे-धीरे इसकी महिमा बढ़ने लगी और आज तो इसे सब कुछ का देने वाला बना दिया गया तथा जो गायत्री वेदों में एक छंद है उसे वेदों की मां तक कह दिया गया।

खैर, हमें तो इस मंत्र से यही सीख लेनी है कि हम अपनी बुद्धि को सुंदर बनायें तथा उज्ज्वल-शुभ कर्मों द्वारा

अपने जीवन को ज्योतिष एवं आदर्शमय बनायें।

. प्रश्न—गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। इस श्लोक का अर्थ और भाव क्या है?

उत्तर—गीता के अनुसार इसका सीधा-सरल अर्थ तो यही है कि श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सभी धर्मों को छोड़कर तुम एक मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर।

इसमें आये सभी धर्म का अर्थ और भाव—क्या है इसका सर्वमान्य उत्तर देना बहुत कठिन है, क्योंकि सबके स्वभाव, संस्कार, रुचियों एवं मान्यताओं में अंतर ही नहीं विरोध भी है। जिसको जिस अर्थ एवं भाव से संतोष होता है वह वही अर्थ एवं भाव निकालता है। इसमें अमुक का अर्थ एवं भाव गलत है और अमुक का सही यह नहीं कहा जा सकता। ऐसा कहना विवाद का कारण बनेगा।

यहां श्रीकृष्ण उपदेश हैं और अर्जुन श्रोता। उपदेश गुरुस्थानीय होता है और श्रोता शिष्य स्थानीय। गुरु शिष्य से कह रहे हैं कि हे शिष्य! तू सभी धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर!

यहां धर्म का अर्थ इस प्रकार समझा जा सकता है। आंख का धर्म है देखना, कान का धर्म है सुनना, नाक का धर्म है सूंघना, जिह्वा का धर्म है स्वाद-रस ग्रहण करना, त्वचा का धर्म है स्पर्श करना और मन का धर्म है संकल्प-विकल्प करना।

जो शिष्य पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की आसक्ति एवं मन के संकल्प-विकल्प का जाल छोड़कर एकमात्र गुरु की शरण में चला जाता है, सर्वतोभात्या उन्हें समर्पित हो जाता है और गुरु के निर्देशानुसार चलने लगता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और वह शोक से पार हो जाता है।

या जो साधक इन्द्रिय-मन के विषयों एवं संकल्पों को छोड़कर मामेकं-माम् एकम् एक मेरी अर्थात् अपने आत्मा की शरण में चला जाता है, मन-इन्द्रियों को समेटकर आत्मलीन हो जाता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है, फिर उसके जीवन में शोक नहीं रह जाता।

पारख प्रकाश : जनवरी

अध्यात्म का सारा उपदेश, ज्ञान का आदान-प्रदान गुरु-शिष्य के बीच ही होता है। इस दृष्टिकोण से उक्त श्लोक का एक अर्थ किया गया है।

**प्रश्न—विवेक दास, इलाहाबाद**

. प्रश्न—जीव को निष्क्रिय एवं अवस्थातीत कहा जाता है, फिर जीव का लक्षण बताया गया है—इच्छा, क्रिया, अवस्था, ज्ञान, अमरता होय। क्या इसमें विरोध नहीं है?

उत्तर—जीव स्वरूपतः निष्क्रिय एवं अवस्थातीत है। अर्थात् जीव के स्वरूप में कोई क्रिया नहीं है और न जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था है। इच्छा, क्रिया, अवस्था, ज्ञान करना ये शरीर में जीव की उपस्थिति के लक्षण हैं। जिस शरीर में ज्ञान तथा इच्छापूर्वक क्रिया होती हो, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था होती हो उसी शरीर में जीव उपस्थित-विद्यमान रहता है। जिस शरीर में ये लक्षण न हों वहां जीव का निवास नहीं है। जीव का गुण-धर्म-स्वभाव ज्ञान है, परंतु जीव के इस ज्ञान गुण-धर्म का प्रकटीकरण शरीर-मन-इंद्रियों के माध्यम से ही होता है, देहातीत अवस्था में नहीं। शरीर के माध्यम से जीव ज्ञान एवं इच्छा पूर्वक क्रिया करता है और जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति का व्यवहार करता है। देहातीत दशा में वह निष्क्रिय एवं अवस्थातीत है। जीव के स्वरूप में न कोई क्रिया है और न अवस्था।

**प्रश्न—डॉ. अमृतसिंह, कानपुर, उ.प्र.**

. प्रश्न—कहा जाता है कि ईश्वर कोई सत्तायुत चेतन अस्तित्व नहीं है, किन्तु विश्वव्यापी नियम है, फिर यह भी कहा जाता है कि ईश्वर हृदय-स्थित चेतन आत्मा ही है! सच क्या है?

उत्तर—सामान्यतः लोगों की धारणा है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, दया के सागर तथा सर्वत्र कण-कण में व्याप्त है और उसकी प्रेरणा-इच्छा से ही सृष्टि की सारी क्रियायें संपादित हो रही हैं, परंतु यह धारणा भावुकतापूर्ण है और सत्य-तथ्य से रहित है और ऐसा कोई ईश्वर है नहीं जो सर्वज्ञ, सर्वत्र और सर्वशक्तिमान होने के साथ-साथ परम दयालु-करुणा सागर हो। यदि ऐसा कोई ईश्वर होता तो सब कुछ सब समय मंगलमय एवं सत्यं, शिवं, सुंदरम् ही होता। रोग, व्याधि, दुख-दारिद्र्य, पीड़ा की कोई

गुंजाइश ही नहीं होती। सर्वज्ञ, सर्वत्र, सर्वशक्तिमान, दयासागर, करुणानिधान ईश्वर और रोग-व्याधि, दुख-दारिद्र्य तथा पीड़ा से बिलबिलाता संसार दोनों का कोई तालमेल नहीं बैठता। यदि कहा जाये कि जीवों को उनके कर्मानुसार ही रोग-व्याधि, दुख, दारिद्र्य, पीड़ा की प्राप्ति होती है, तो जीवों को कर्म करने की प्रेरणा देने वाला, जीवों से कर्म करवाने वाला ईश्वर है, क्योंकि उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। तब जीवों को दुख-दारिद्र्य आदि क्यों! अतः सृष्टि का संचालन करने वाला कोई चेतन ईश्वर नहीं है। सृष्टि अपने गुण-धर्मों से स्वयमेव संचालित है। सर्वत्र कण-कण में नियम है। सृष्टि में जो कुछ हो रहा है नियमानुसार ही हो रहा है। इस नियम में न कोप है न क्षमा है, न घृणा है न प्रेम है, क्योंकि यह जड़ है। इस नियम का कोई नियामक नहीं है, क्योंकि प्रकृति का नियम स्वयंभुव है तथा अनादि-अनंत है और विश्वव्यापी है। बाहर का ईश्वर इस अनादि-अनंत विश्वव्यापी नियम को ही कहा जा सकता है। किन्तु यह चेतन नहीं है, जो कुछ सोच-समझकर करता हो।

जिस ईश्वर को प्राप्त कर कृतार्थ होने की बात है वह कोई बाहर का ईश्वर नहीं है, किन्तु शरीरोपाधि से हृदय-स्थित अपना आपा, चेतन स्वरूप ही है। उसे पाना नहीं है, वह नित्य प्राप्त ही है, स्व सत्ता है। यदि ईश्वर बाहर से पाया जाता है, उसके दर्शन होते हैं तो एक दिन वह बिछुड़ जायेगा और जो मिले तथा बिछुड़े, इंद्रियों से जिसके दर्शन होते हैं वह तो माया है, विषय है। वह ईश्वर कैसे हो सकता है। इसके विरुद्ध अपने आपा को न पाना है और न खोना है। वह तो नित्य प्राप्त ही है। केवल उसको समझना है और मन-इंद्रियों को समेटकर उसमें स्थित होना है।

इस प्रकार जिस ईश्वर के लिए कहा जाता है कि वह कण-कण में व्याप्त है और सृष्टि का संचालक है वह कोई चेतन अस्तित्व नहीं किन्तु विश्वव्यापी नियम है, जो ज्ञान गुण रहित है तथा अनादि अनंत है और जिस ईश्वर को प्राप्त कर, जिसमें स्थित होकर कृतार्थ होने की बात है वह हर व्यक्ति का अपना आपा, स्वसत्ता चेतन अस्तित्व है।

—धर्मेन्द्र दास

पारख प्रकाश : जनवरी

## लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

### 17. शासन के चार रूप

1. *If a wholly Great One rules  
the people hardly know that he exists.  
Lesser men are loved and praised,  
still lesser ones are feared,  
still lesser ones are despised.*
2. *How thoughtful one must be in what one  
says!  
The work done, business takes its course,  
and all people think:  
'We are free.'*

#### अनुवाद

1. जब एक पूर्णतः महान (ताओ) का शासन होता है, तब लोग उसकी सत्ता से ही अनभिज्ञ होते हैं। उससे कम वे हैं, जो प्रेम और प्रशंसा पाते हैं। उनसे भी कम वे हैं, जिनसे लोग भय रखते हैं। जो उनसे भी हीन हैं, लोग उनसे घृणा रखते हैं।
2. हमारे बोलने में कितनी सावधानी होनी चाहिए? काम सम्पन्न, उद्देश्य पूरा हुआ, और सभी लोग सोचते हैं, 'हम स्वतंत्र हैं।'

**भावार्थ**—1. जब ताओ के अनुसार किसी महान उदारमना सम्राट का शासन होता है, तब लोग उसके शासन से अपरिचित रहते हैं। उनसे कम योग्यता के वे शासक हैं जो प्रजा से प्रेम और प्रशंसा पाते हैं। उनसे कम योग्यता के वे हैं जिनसे लोग डर मानते हैं। और उनसे नीचे स्तर के वे शासक हैं जिनसे लोग घृणा करते हैं।

2. हमें अपने बोलने में कितना सावधान रहना चाहिए, यह गंभीरता से सोचने योग्य है। जब कोई कार्य संपन्न हो जाता है तब वह उद्देश्य पूरा हो जाता है। ऐसी स्थिति में सभी लोग सोचते हैं कि हम स्वतंत्र हैं।

**भाष्य**—जब एक पूर्णतः महान (ताओ) का शासन होता है, तब लोग उसकी सत्ता से ही अनभिज्ञ होते हैं। स्वतंत्रता सुख है। हर प्राणी स्वतंत्रता चाहता है। उच्छृंखलता पर नियंत्रण आवश्यक है, क्योंकि उच्छृंखलता स्वतंत्रता नहीं, अपितु अपने और दूसरे के लिए दुखदायी है। इसलिए उसका निरोध भी प्रजा की स्वतंत्रता के लिए ही है। ग्रंथकार ने 39वें अध्याय में कहा है कि राजकुमार और सम्राट अपने को दीन, हीन और तुच्छ मानकर प्रजा की सेवा करते हैं। सम्राट स्वयं को प्रजा का स्वामी नहीं, अपितु सेवक मानता है। ऐसे विनम्र सम्राट ताओ के निकट हैं, विश्वसत्ता के शाश्वत नियम के निकट हैं। ऐसे शासक न विलासी होते हैं, न अहंकारी। वे सादे, संयमी और विनम्र होते हैं। इसलिए उनके शासन में प्रजा को पता भी नहीं चलता कि हमारे ऊपर कोई शासक है। ऐसे शासन को ग्रंथकार उत्तम शासक की व्यवस्था मानते हैं।

उनसे कम वे शासक हैं, जो प्रेम और प्रशंसा पाते हैं। ताओ से थोड़ा दूर रहने वाले सम्राट रजोगुणी होते हैं। वे भोग-विलास की आसक्ति में जीते हैं। वे अपने नाम की प्रशंसा चाहते हैं और कुछ ऐसा करते हैं जिससे प्रजा उनसे प्रेम करे और उनकी वाहवाही करे। ऐसे सम्राट भी प्रजा की अच्छी व्यवस्था करते हैं, किंतु अपने नाम की प्रशंसा चाहते हैं। आज-कल तो जब प्रदेशों में पार्टी की सत्ता बदलती है, तब रातोंरात पहले वाले मुख्यमंत्री के चित्र और प्रशंसा के पट जो नगरों और सड़कों पर लगे होते हैं, उन्हें पोंछकर नये मुख्यमंत्री के चित्र और प्रशंसा-सूचक वचन उन पर लग जाते हैं।

उनसे भी कम वे हैं, जिनसे लोग भय खाते हैं। तीसरी श्रेणी के शासक वे हैं जो भोगी-विलासी तो हैं ही, अहंकारी भी हैं; और वे ऐसा काम करते हैं, जिससे उनकी कठोरता से जनता भय करती है। 'बिनु भय होय न प्रीति' तीसरी श्रेणी की बात है।



जो उनसे भी हीन हैं, लोग उनसे घृणा करते हैं। ये हैं महान कहे जाने वाले शैतान सिंकदर, चंगेज खां, तैमूर लंग, नादिर शाह, हिटलर आदि। ऐसे शासकों से लोग घृणा करते हैं।

हमारे बोलने में कितनी सावधानी होना चाहिए? एक बात से बिगड़ा काम बन जाता है और एक बात से बना काम बिगड़ जाता है। एक बात से परिवार और समाज में उत्तेजना फैलती है और एक बात से उनमें प्रेम और प्रसन्नता की लहर फैल जाती है। एक बात से आपसी विश्वास टूटता है और एक बात से विश्वास शक्तिशाली होता है। उत्तेजित होकर बोलने का अर्थ है अपने और दूसरे की शांति को भंग करना। इसलिए बहुत सावधानी से बोलना चाहिए और मितभाषी होना चाहिए। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोई बोलै जान।  
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन  
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।  
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय

पहले के सम्राट सावधान रहते थे कि हम प्रजा में ऐसी प्रतिज्ञा न करें कि उसे पूरा न कर सकें और जो ताओ से हटकर हो। वे बहुत सम्हालकर बोलते थे और प्रतिज्ञा करते थे। वे ताओ के, विश्वसत्ता के नियम के अनुसार चलते थे और विचारकर बोलते थे। सभी को सम्हालकर बोलना चाहिए।

काम संपन्न, उद्देश्य पूरा हुआ और सभी लोग सोचते हैं, हम स्वतंत्र हैं। शासक द्वारा चलाया गया काम जो जनता के कल्याण के लिए है, संपन्न हो गया, तो जनता समझती है कि उद्देश्य पूरा हो गया। जनता यह नहीं जानती कि सम्राट का आगे कितना काम करना शेष है। वह सोचती है कि हम स्वतंत्र हैं।

ताओ के निकट, उत्तम विधान के साथ काम करने वाले शासक की प्रशंसा में चीन में सम्राट 'याओ' के समय में एक गीत प्रसिद्ध था। उसका इंग्लिश में इस प्रकार अनुवाद है—

*The sun rises and I go to work.*

*The sun sets and I go to rest.*

## पलटू साहेब की बानी

फकीर के बालके गुसा न कीजिये,  
गुसा फकीर को नाहिं अच्छा।  
बात मीठी कहौ नीक सबको लगै,  
भेष भगवन्त की पकरि पच्छा  
रहनि ऐसी रहो बहुत गरीब है,  
सकल संसार मिलि करै रच्छा।  
दास पलटू कहै बहुत चुचुकारि कै,  
बचन को मानि अब लेहु बच्छा

\* \* \*

निन्दक है परस्वारथी करै भक्त का काम  
करै भक्त का काम जगत में निन्दा करते।  
जो वे होते नाहिं भक्त कहवाँ से तरते  
आप नरक में जाहिं भक्त का करै निबेरा।  
फिर भक्तन के हेतु करै चौरासी फेरा  
करै भक्त की सोच उन्हें कुछ और न भावै।  
देखो उनकी प्रीति लगन जब ऐसी लावै  
पलटू धोबी अस मिल्यौ धोवत है बिनु दाम।  
निन्दक है परस्वारथी करै भक्त का काम

*I dig a well and I drink.*

*I plough a field and I eat.*

*The emperor : what does he give me?*

(अर्थात् प्रजा कहती है) सूर्य उगता है और मैं काम-धंधा पर जाता हूँ। सूर्य डूबता है और मैं विश्राम में जाता हूँ। मैं कुआँ खोदता हूँ और उसका जल पीता हूँ। मैं खेत जोतता हूँ और उससे उत्पन्न अन्न खाता हूँ। सम्राट? वह मुझे क्या दे देता है?

इस प्रकार निष्काम और निर्हंकार सम्राट प्रजा को स्वतंत्र और निर्भय रखता था। यह उत्तम सम्राट और उसकी व्यवस्था की पहचान है।

पारख प्रकाश : जनवरी

## असली मंजिल की पहचान

लेखक—भूपेन्द्र दास

“घर” शब्द कानों में पड़ते ही एक विशेष प्रकार के भवन या मकान का नक्शा हमारे मानसपटल पर उभर आता है जिसमें कुछ व्यक्ति निवास करते हैं। प्रश्न होता है कि घर किसे कहते हैं? केवल चारों तरफ से घिरी दीवार ही घर नहीं है। बीच की खाली जगहें भी घर के अन्तर्गत आते हैं। ‘घर’ का शाब्दिक अर्थ अनेक हैं जैसे—गृह, मकान, महल, गृहस्थी, कुल, वतन, स्वदेश, दीवार से घिरा और छाया हुआ स्थान, आदमी के रहने की जगह, आवास आदि (बृहत हिन्दी कोष)।

सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हमारा घर कहां है—हमारा घर है हमारा देश, हमारा घर है हमारा मकान, हमारा घर है हमारा शरीर और हमारा असली घर है—अपनी आत्मा। अंग्रेजी भाषा में दो शब्द चलते हैं—Home और House. Home = अपना स्वयं का घर, House = सार्वजनिक जगह, जैसे Light House = (प्रकाश गृह), Rest House विश्रामगृह, Sweet House (मिष्ठान भंडार)। एक फिल्म में गाया गया है “लोग जहां पर रहते हैं, उसे घर कहते हैं, हम जिस घर में रहते हैं उसे प्यार का मंदिर कहते हैं।” घर वह जगह होती है जहां लोग विश्राम पाते हैं। अपने कामकाज से वापस लौटकर जहां शांति की नींद लेते हैं। और अपने आप में ताजगी महसूस करते हैं।

पहले आज के जैसा बड़ा-बड़ा महल नहीं होता था। घास-फूस की छोटी-छोटी झोपड़ियां बनती थीं। खेतों में एक ही फसल हुआ करती थी। उसी में लोग सुख-शांति और आराम महसूस करते थे। चेहरा खिला हुआ व प्रफुल्लित दिखाई पड़ता था। शेष समय का सदुपयोग स्वाध्याय, चिंतन तथा धार्मिक अनुष्ठानों में करते थे। आज वे झोपड़ियां व छोटे-छोटे मकान बहुमंजिली इमारतों व बंगलों का रूप ले रहे हैं। खेतों में दो-तीन फसलें उगायी जा रही हैं। पहले की अपेक्षा कल-कारखानों का भी खूब विस्तार हो रहा है। पहले लोग पैदल चलते थे, आज तीव्रगामी संसाधनों की

भरमार है। धन-संपत्ति खूब बढ़ी है फिर भी आज आदमी रोता रहता है। चिंता, भय, संदेह एवं तनाव से भरा रहता है। लोगों के चेहरे पर जो निर्भयता दिखती थी अब उसमें कटौती आ रही है। आज से लगभग बीस वर्ष पहले गलियों से गुजरते थे तो दरवाजों पर लिखा मिलता था—सु-स्वागतम, शुभ-लाभ, आइये पधारिये, आपका स्वागत है, आदि किन्तु अब चाहे शहर हो या गांव, कस्बा हो या देहात लगभग एक ही प्रकार का वाक्य लिखा मिलता है—कुत्तों से सावधान। पढ़कर सहज अंदाज लगा सकते हैं कि इन घरों में रहने वाले लोग कितने घबराये हुए एवं भयभीत हैं। थोड़ी देर भी दरवाजा खुला रखना नहीं चाहते हैं। हमारे भीतर नाना प्रकार के भय सवार हैं। किसी ने बहुत सुंदर चित्रण किया है—

*सीने में जलन आंखों में तूफान सा क्यों है।*

*इस शहर में हर शख्स परेशान सा क्यों है*

हमारी मंजिल ऐसी हो जो हमें सच्ची निर्भयता दे, शांति और सुख दे। जहां रहकर हमें पीड़ा, अवसाद, त्रास झेलना न पड़े। जहां रहकर हमें पीड़ा, कष्ट, अवसाद, दुख झेलना पड़े वह हमारा सच्चा घर नहीं हो सकता। हम मकान तो बहुत सुंदर बना लेते हैं मगर उनमें ठीक से रहना नहीं जानते हैं तो उस सुंदर मकान की विशेषता ही क्या हुई? कहा गया है—“ईंट गारे की दीवारों से नहीं, घर बनता है रहने वालों से”। मकान छोटा हो या बड़ा, झोपड़ी हो या महल अगर उसमें रहने वाले लोग आपस में प्रेमपूर्वक रहते हैं, एक-दूसरे का आदर करते हैं, सम्मान देते हैं, पड़ोसियों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखते हैं तो वहां सुख-शांति के झरने बहते हैं और इसके विपरीत व्यवहार है तो अच्छा-खासा पक्का मकान भी काटता हुआ नजर आता है। हम अपने घर-परिवार में कैसे रहें? संतजन एक बहुत सुंदर उदाहरण दिया करते हैं—

एक संत अपने भक्त के घर ठहरे हुए थे। एक दिन

परिवार के मुखिया से आपसी बातचीत हो रही थी। संत ने पूछा—आपका लड़का आपके साथ ठीक व्यवहार तो करता है? भक्त थोड़ी देर तक एकदम मौन हो गया, आंखें नम हो गयीं। फिर उन्होंने धीरे से कहा—संत जी, लड़का के बारे में मैं ज्यादा कुछ न कहूंगा। बात सामने आ ही गयी है इसलिए छोटा-सा निवेदन आपसे है। आप मेरे लड़के को समझा दीजियेगा कि मेरे से इस बुढ़ापे में अगर कोई गलती हो जाती होगी तो वे मुझे बता दिया करेंगे ताकि मैं उस पर सुधार कर सकूँ और पुनः वैसी गलती न हो इसका ध्यान रख सकूंगा। अवस्था के कारण जाने अनजाने में न जाने कितनी गलतियां हो जाया करती हैं। वे कुछ कहते ही नहीं। आखिर वे मौन रहेंगे तो मैं अपना सुधार कैसे कर पाऊंगा? दूसरे दिन संयोग से भोजन पश्चात वह युवक संतजी के कक्ष में चले आये। कुछ चर्चा पश्चात संतजी ने युवक से पूछा—आपके पिताजी और आपका व्यवहार कैसा निपटता है? इतना सुनते ही युवक की आंखों में आंसू आ गये। वह आंसू पोंछकर संत से कहता है—संत भगवन! मेरे पिता एकदम देवस्वरूप हैं। वे हमारे किसी काम में व्यवधान नहीं डालते हैं बल्कि हमारा सहयोग ही करते हैं। उनका मस्तिष्क हर समय ऐसा रहता है मानो कि Ice Factory (आइस फैक्ट्री) हो और उनकी जुबान से बातें ऐसी निकलती हैं मानो कि Sugar factory हो।

जिनका मस्तिष्क बर्फ (Ice) जैसा ठंडा हो और जिनकी वाणी शक्कर (sugar) से भी अधिक मीठी हो ऐसे व्यक्ति के जीवन-व्यवहार में भला विषमता कैसे आ सकती है। बात खुल ही गयी है तो मैं आपसे इतना ही निवेदन करता हूँ कि आप पिताजी को समझा दीजियेगा कि जाने अनजाने में हमसे जो गलतियां हो जाती हैं कृपा करके वे हमें समझा दिया करें। वे हमें नहीं समझायेंगे, हमारी गलती को नहीं परखायेंगे तो हमें सही दिशा कैसे मिलेगी?

इस प्रकार से जहां लोग स्वयं अपनी गलती पर ध्यान रखते हैं, दूसरों के दोषों पर नहीं तो वह घर घर नहीं बल्कि मंदिर बन जाता है। क्योंकि प्रेम ही परमात्मा है। सदैव वैसा ही व्यवहार दूसरों से करना चाहिए जैसा कि हम अपने लिए चाहते हैं। हम लोगों से प्रेम और

प्यार चाहते हैं। हम चाहते हैं कि लोग हमसे प्रेम से बातें करें। तो ऐसा ही व्यवहार हम दूसरों से करें। हम दूसरों को झुकाना चाहते हैं तो पहले स्वयं झुक जायें। जो हम दूसरों के साथ करते हैं वही लौटकर हमें मिलता है। जब हम अहंकारी होकर कठोर बात दूसरों से करते हैं तो अहंकारपूर्ण जवाब ही आता है। जब हम विनम्रतापूर्वक शांतचित्त होकर बात करते हैं तो सामने से हमें भी अमृत युक्त मीठी वाणी पुरस्कार स्वरूप मिलती है। मन और माहौल तभी बिगड़ता है जब हमारे संबंधों में कड़ुवाहट आती है। जब हम दूसरों से मीठा वचन चाहते हैं तब स्वयं मीठा बोलने में हमारा क्या नुकसान हो जाता है। यथा—

*जिह्वा छेदनं नास्ति, नास्ति तालवस्य भेदनम्।  
अर्थस्य च व्ययो नास्ति, वचने का दरिद्रता*

अर्थात्—मीठा वचन बोलने में जिभ्या कट नहीं जाती, तालू में छेद नहीं हो जाता और धन भी खर्च नहीं होता है तब फिर मीठा वचन बोलने में दरिद्रता क्यों?

घर, समाज, आश्रम, संस्था हम जहां भी रहते हों वहां प्रेमपूर्वक जीवन जीना मनुष्य जीवन की सफलता है। अध्यात्म में अपनी आत्मा ही अपना आश्रय और विश्राम स्थल है। देह भाव को छोड़कर आत्मभाव में निमज्जन करना असली घर में निवास करना है, असली मंजिल को पाना है। यह तब होगा जब हमारा व्यवहार मधुर व समुज्ज्वल होगा। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि समाधि के दो रूप हैं—( ) व्यवहार काल की समाधि ( ) अभ्यास काल की समाधि। जब हमारा मन व्यवहार का काम करते हुए हर समय निर्विकार, सरल, प्रेमपूर्ण, अनासक्त रहता है। साथ-साथ मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ ऐसा आत्मभाव सब समय बना रहता है यह स्थिति व्यवहार काल की समाधि है। ऐसे अनुद्वेग चित्त को लेकर जब हम साधना में बैठते हैं और तटस्थ होकर संकल्प-विकल्पों को देखते हैं तब ऐसी स्थिति आ जाती है कि मन के सारे विचार समाप्त हो जाते हैं। यह अभ्यास काल की समाधि है। इस दशा में मन आत्मलीन हो जाता है। यही साधना की परमावस्था है। यही है अपने महल में माहली हो जाना। हमें ऐसी मंजिल चाहिए जो हमसे

कभी भी न बिछुड़े। बाहर की मंजिल मिलती है और छूट जाती है। भीतरी मंजिल एक बार मिल गयी फिर सदा प्राप्त रहती है।

हम ऐसी मंजिल की तलाश करें जहां पहुंचकर सारा रास्ता समाप्त हो जाये—“है लक्ष्य पहुंचना उस मंजिल तक, जिसके आगे राह नहीं।” भगवान बुद्ध ने धम्मपद में कहा है—“गत अध्वनः” समाप्त रास्ता वाला बनो। रास्ता कहां समाप्त होता है? स्थल का रास्ता समुद्र के निकट जाने पर समाप्त हो जाता है। समुद्री जहाज का रास्ता तट पर जाने पर समाप्त हो जाता है। मन का रास्ता कहां समाप्त होता है? इसका उत्तर सद्गुरु श्री निर्मल साहेब जी के शब्दों में देखें—“निर्मल इस मर्ज की दवा समाधि में बताया है।” (निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर) समाधि से अभिप्राय है—सम (शमन) + आधि (मानसिक विकारों का) = समाधि। समस्त मानसिक विकारों का शमन हो जाना ही समाधि है। संकल्प देह और दुनिया को जोड़ता है। साधक जब साधना में बैठता है मन के संकल्पों को देखता है। संकल्प आते और जाते रहते हैं। जब वह और अधिक सावधानीपूर्वक तटस्थ होकर संकल्पों को देखता है तो वह पाता है कि मैं बिल्कुल अकेला हो गया हूं। जहां कोई दूसरा नहीं है। तब अपने को कैवल्य असंग, परमानंद में विराजमान पाता है। जैसे घर में पांच लोग हैं उनमें से चार लोग बाहर चले गये तो रहने वाला अकेला बच गया। न तो कोई उनके साथ बोलने वाला है न साथ बैठने वाला और न अन्य कोई बात-बर्ताव करने वाला है, ऐसे ही जब हम समाधि में बैठें तो अपने को बिल्कुल अलग कर लें। शरीर से तो अकेले हों मगर मन में अभी कोई बोल रहा है, गा रहा है, गाली दे रहा है, सम्मान का बोध हो रहा है तो अभी समाधि सधी नहीं है। समाधि अभ्यास करते समय मन पूरा विलीन हो जाना चाहिए।

साधक समाज का पथ प्रदर्शक माना जाता है। यदि साधक ही कामी, क्रोधी, लोभी, मोही है तो उससे क्या अपेक्षा रखनी चाहिए। हम साधक होकर अगर असावधान हैं तो स्वयं को ही धोखा देते हैं, “दूसर को

करै चांदना आप अंधेरे माहि।” या “दिया तले अंधेरा” वाली कहावत चरितार्थ होगी। अतः हम सावधान रहें। सावधानी ही साधना है। कोई हमें न देखे, न जाने तो हमारा क्या बिगड़ता है। यदि हम चरित्रवान हैं तो हमें किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। किसी को देखकर मोह न करें और न ही दूसरों को मोहित करें। यदि कोई दूसरा आप पर मोह करने लगता है तो उस अनाड़ी पर कृपादृष्टि करके उसे सावधान कर दें। ऐसा हम तभी कर सकते हैं जब स्वयं सावधान रहेंगे। सब समय जगे हुए होकर विचरण करें। रास्ता चलते या गाड़ी चलाते समय दूसरा ठोकर न मार दे ऐसा सोचकर हम कितनी सावधानी बरतते हैं। पर मोह के संबंध में हम बिक जाते हैं।

आप अपने मकान के अंदर बैठे हैं, किसी ने बाहर से आकर आपका दरवाजा खटखटाया। आपने देखा गांव का बहुत बड़ा बदमाश दरवाजे पर खड़ा है। आपने दरवाजा नहीं खोला। कुछ देर पश्चात फिर दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनाई दी। आपने निकट जाकर देखा गांव का सबसे बड़ा सज्जन आदमी आया है। आपने दरवाजा खोल दिया क्योंकि वह आपका किसी प्रकार नुकसान न पहुंचा कर आपके हित का काम कर सकता है। उक्त दोनों ही स्थितियों में आप स्वतंत्र थे कि दरवाजा खोलना है या बंद रखना है। अध्यात्म में शरीर मकान है। इन्द्रियां दरवाजे हैं और मन खिड़की है। आप पूर्णरूपेण स्वतंत्र हैं कि कब अपने खिड़की और दरवाजों को खुला रखना चाहते हैं और कब बंद रखना। कौन-से विचारों को आप अपने मन में स्थान देना चाहते हैं और कौन-से विचारों को नहीं।

प्रसंगानुसार एक बुढ़िया की कहानी बहुत सटीक बैठती है। एक गांव में बुढ़िया अकेली रहती थी। बहुत प्रसन्नचित्त उसका जीवन था। सब समय वह खुश रहती थी। एक दिन लोगों ने उस बुढ़िया से पूछा—आपके इस सुखी जीवन का राज क्या है? उस बूढ़ी मां ने कहा—और कोई बात तो मैं नहीं जानती, पर हां, इतना जरूर कहूंगी कि मैं अपने घर के सभी खिड़की-दरवाजों

कबीर साखी (साखी ग्रंथ)।

को बंद रखती हूँ। लोगों ने कहा कि माताजी, आप भी मजाक करती हैं। रोज आप दरवाजा खोलकर बाजार-दुकान आदि जाती हैं। खिड़कियां भी खुली रहती हैं और कहती हैं सारे खिड़की-दरवाजों को बंद रखती हूँ। उस बुढ़िया ने कहा—बेटा, मैं यह ईंट, सीमेन्ट, लोहा, बालू आदि से बने मकान की बात नहीं करती हूँ, मैं तो इस हाड़, मांस, चाम के बने मकान की बात कर रही हूँ। मतलब यह हुआ कि मैं अपने मन और इन्द्रियों को संयमित रखती हूँ। शरीर एक मकान है, इन्द्रियां दरवाजे हैं, मन खिड़की है। आत्मा उसका केन्द्र है। मेरे सुख का राज यही है कि शरीर के सभी दरवाजों को बंद (संयमित) करके रहती हूँ।

अतः दरवाजा बंद रखना सुख का कारण है और खुला रखना दुख का। हम मन की साधना कर रहे हैं तो उसका प्रथम पाठ है इन्द्रियों को संयमित रखना। आप किसी तालाब को साफ करना चाहते हैं और उसकी गंदगी को निकालना चाहते हैं। मोटर लगाकर पानी को बाहर निकाल रहे हैं किन्तु उन स्रोतों को अभी बंद नहीं किया गया है जिधर से पानी आ रहा है तो आप कभी भी सफाई नहीं कर सकते। सबसे पहले उन स्रोतों को बंद करना होगा जहां से पानी आ रहा है। तभी उस तालाब की सफाई हो सकेगी। यदि आप अपने कमरे को साफ रखना चाहते हैं और आंधी चल रही है खिड़की और दरवाजे खुले हैं तो क्या होगा? आप पहले खिड़की और दरवाजों को बंद करके फिर झाड़ू लगाइये। आपका कमरा साफ हो जायेगा। किसी ने बहुत सुंदर कहा है—“उन सभी छिद्रों को बंद रखें जिधर से हमारी शक्ति निरंतर बाहर बह जाती है।” सद्गुरु श्री विशाल साहेब जी कहते हैं—“तब घर पावै आपना दुर्गुण जीत समूल ” इन्द्रियों को शमित करके साधक जब मन की गहराई में उतर जाता है तब जीवन में शांति के हिलोरे उठने लगते हैं। पारख सिद्धांत के परम तपस्वी सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी लिखते हैं—“ऋषि कहते हैं कि यह ग्यारह द्वारों वाला शरीर-नगर आत्मदेव रूपी बादशाह का पड़ाव-स्थान है, कैप

विशाल वचनामृत।

## काया

रचयिता—डॉ. अमृत सिंह

तजत प्राण काया कुम्हलानी,  
ठहरी सांसों की सतत रवानी  
जो काया नित मलमल धोई,  
साथ किसी के गई न कोई।  
जिसको निसदिन सजा संवारा,  
वो काया पल में मुरझानी

जिस काया में अहम समाया,  
बनी राख पल में वो काया।  
छूटे पुरजन, छूटे परिजन,  
छूटी देह महा अभिमानी

जिस काया के बल पर प्राणी,  
बोले दंभ द्वेष की वाणी।  
नादां मानव समझ न पाता,  
चार दिनों की ये जिन्दगानी

है कांटों भरी डगर जीवन की,  
कब होती कहां किसी के मन की।  
हैं धूप छांव जीवन के सुख दुख,  
ये सुख-दुख जैसे बहता पानी।  
तजत प्राण काया कुम्हलानी

है। आत्मदेव अजन्मा है, अवक्र चेतसः है, सरल शुद्ध चेतन है। जब साधक समझ लेता है कि यही मैं हूँ, तब वह विषयों का ध्यान छोड़कर इसी के ध्यान में, अनुष्ठान में, आराधना में लग जाता है। निजात्मदेव की आराधना सर्वोपरि आराधना है। जब साधक अपने अजन्मा चेतन स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब उसके सारे मोह-शोक छूट जाते हैं। वह इस संसार को एक पड़ाव समझकर यहां से पूर्ण अनासक्त हुआ जीवनमुक्त होकर विचरता है। उसकी दृष्टि में मौत नाम की कोई चीज नहीं रह जाती। वह अमर स्वरूप में स्थित रहता है। शरीर जब गिर जाता है, वह सदैव के लिए विदेह हो जाता है और सर्वदा के लिए विश्राम पा जाता है।”

उपनिषद सौरभ, पृ.

पारख प्रकाश : जनवरी

## ←--- परमार्थ पथ ---→

### सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

यह तथ्य हर क्षण याद रखो कि देह का विसर्जन निकट है और उसके साथ सारा दृश्य सदा के लिए लुप्त होने वाला है। तुम्हारा अस्तित्व जड़-दृश्य से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन है। वह असंग है, अकेला है, नित्य एवं शाश्वत है और सदैव दुखहीन परम शांत है। अब जीवन में, जो शेष बचा है, स्वरूप विचार ही में रमो। मिलना-बिछुड़ना, लेना-देना, आना-जाना तथा पांचों विषयों का प्रतीत होना सब स्वप्नवत है। कहीं राग एवं द्वेष करने की बात ही नहीं है। दूसरे की भूल-चूक भुला दो, और अपनी भूल-चूक न दोहराओ। सदैव अपने आप में शांत रहो।

\* \* \*

तुम्हारी आलोचना दूर वाले करते हैं, निकट वाले करते हैं, अच्छे लोग भी करते हैं, क्योंकि समझ सबकी अलग-अलग है, झुकाव विभिन्न समयों में विभिन्न तरफ हो जाता है। मन के सोचने के बिंदु बदल जाते हैं। इसलिए किसी से भी कुछ आशा न रखो। इतना होने पर भी, उन्हीं मनुष्यों में तुम्हें अपना काम करना है, वे भी सहायक होते हैं जिनमें से कई लोग तुम्हारी किसी बात में आलोचना भी करते हैं। मनुष्यों का मन बदलने वाला है। 'एक रंग में जो रहे, ऐसा बिरला कोय।' तुम दूसरे की आलोचना करने से बचो, सबकी सहो, प्रतिक्रिया शून्य होकर जीयो। इसी में स्वरूपस्थिति की साधना सधेगी। हां, कुटिल लोगों से दूर रहो।

\* \* \*

याद रखो, जो तुम्हारा सत्कार करते हैं, पूजा करते हैं, आरती भी उतारते हैं, और तुम्हें गुरु, सद्गुरु, आचार्य आदि भी कहते हैं, उनमें से कई हो सकते हैं जो तुम्हारी आलोचना भी करेंगे। संसार ऐसा ही है। तुम्हें किसी की अपेक्षा नहीं होना चाहिए। सबका हित सोचो, जितना बन सके हित करो, और दूसरों द्वारा जो सत्कार और तिरस्कार मिले विनम्रता से सह लो। कुछ रहेगा

नहीं। क्या तुम्हें खबर नहीं है कि तुम्हारे दादा-बाबा एवं गुरुओं का कुछ नहीं रह गया? पूरे शारीरिक जीवन को शून्य रूप में देखो, क्योंकि आज-कल में यही होना है। सदैव आत्मलीन रहने की साधना में रहो, यही जीवन की सार्थकता है।

\* \* \*

हमारे चारों ओर अनात्म और अनित्य पदार्थों का पसारा है। उनमें मोह करने का अर्थ है आधारहीन (शून्य) का सहारा पकड़ना। जिसका परिणाम है नीचे गिरकर टूट जाना और मर जाना। इस संसार की किसी भी वस्तु का मोह करना अपना अज्ञान प्रकट करना है। बाहरी मोह से ही साधक अपने आप में शांत नहीं हो पाता। जिसका समस्त बाहरी मोह मिट गया है, वह अपने आप शांत हो जाता है। मिलना क्षणिक है। संबंध क्षणिक है, स्थिर तो असंग स्थिति है। बहुत मिल चुके हो, और मिलते-मिलते अनमिलता ही बनी रही। जब अनमिलता ही हाथ आती है तब पहले से ही अनमिलता, असंगता, कैवल्य, बक्रा, शेष की स्थिति अपनाना चाहिए।

\* \* \*

साधक राजनीतिक चर्चा से बचे, सांसारिक वार्ता से बचे। अपने समय का क्षण-क्षण आत्म-चिंतन में लगावे। आज-कल में काया छूट जायेगी और भव-बंधन काटने का समय समाप्त हो जायेगा। अपने ऊपर आये हुए घात-प्रतिघात को निर्विकार भाव से सहे। उनमें कोई दम नहीं है। इस सपना में मुझे किसने क्या कह दिया इसका कोई मूल्य नहीं है। और जो 'मुझे' शब्द से जाना जाता है, वह तो अभौतिक है। शरीर और उसके नाम-रूप को अपना स्वरूप मानकर भ्रम पैदा होता है। मुझ तक तो किसी विषय की पहुंच ही नहीं हो सकती, फिर मोह-शोक क्या।

\* \* \*

यह शरीर मानो नहीं है, अतएव इसके व्यवहार वर्तमान में होते हुए भी नहीं हैं। जो हमारे चारों तरफ प्राणी-पदार्थ दिखते हैं, अंततः नहीं हैं। मन और इंद्रियों का व्यवहार अंततः नहीं है, किंतु जब तक प्रारब्धकर्म के जोर से शरीर है, तब तक यह सब है, परन्तु क्षणिक

है। क्षण-क्षण सब सामने होकर खोता जा रहा है। मैं द्रष्टा चेतन सब समय अपने आप में स्थिर तत्त्व हूँ। अपने आप में निमग्नता परमानंद है, परम सुख है, निर्वाण है, मोक्ष है। मन से शरीर और संसार को सब समय छोड़े रहो, और अपने आप में तृप्त रहो। जो छूटने वाला है, क्षण-क्षण छूटता है, उसका मोह करना घोर अज्ञान है।

\* \* \*

शरीर, प्राण, मन, बुद्धि आदि प्रकृति की विकृति से मैं सर्वथा पृथक् शुद्ध चेतन हूँ, असंग, अद्वय, अकेला, पूर्णकाम, स्वतः तृप्त हूँ, इस भाव को मुमुक्षु निरंतर बनाये रखने की साधना करे। यह जड़-प्रकृति का विकृति-कार्य पदार्थ-निर्मित प्रपंच क्षण-क्षण बदलने वाला और मुझ असंग चेतन से सर्वथा, सर्वदा और सर्वत्र पृथक् है। मैं तो निराला हूँ। मेरे में दुख का लेश नहीं है। सारा दुख जड़ प्रकृति की विकृति के संबंध में है। अतएव निरंतर अपने असंग स्वरूप के स्मरण में रहना चाहिए। सारा प्रतीत जड़ दृश्य है, जो मुझसे सर्वथा दूर है। इससे परम विरक्ति ही आनंदप्रद है।

\* \* \*

पेट को ठीक करने के लिए समय-समय से कुछ न खाना परम औषध है। एक समय न खाना, पूरा दिन न खाना, चौबीस घंटे न खाना काफी है। रोज-रोज पेट में खाद्य-पदार्थ डालते-डालते पेट कबाड़खाना बन जाता है, और उसकी पाचन-प्रणाली मंद पड़ जाती है। बीच-बीच में न खाने से जठराग्नि शुद्ध एवं तेज हो जाती है। कभी-कभी न खाने से सुख मिलता है। भूखा रहने से दुख होगा, यह भ्रम है। परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि नित्य जलपान एवं भोजन हलका ही लेना चाहिए। जमकर खाना मूर्खता है। हलका खाना, वाक्य-संयम रखना, अनात्म स्मरण त्यागना, आत्म-चिंतन करना परमानंद का रास्ता है।

\* \* \*

संसार कचड़ा खाना है। यहां सर्वत्र राग-द्वेष का बाजार गरम है। शरीर मल का थैला है। मन उद्वेगों की गुफा है। चारों तरफ हाय-हाय है; क्योंकि तृष्णा जोरदार

है। बिना तृष्णा का त्याग किये, हाय-हाय नहीं मिट सकता। तृष्णा हर जगह अपना स्थान बना लेती है। सांसारिक भोगों में तो वह रहती है, शुभ मार्ग में भी अपनी धाक जमा कर रहती है। जो तृष्णा से स्वयं को छुड़ा लेता है, वह परम शीतल हो जाता है। शरीर-निर्वाह सादा और स्वल्प ढंग से ले, और सब तरफ तृष्णा त्यागकर संतोष-पियूष का निरंतर पान करे। बस, सदैव सुखी।

\* \* \*

मन से सतत सावधान रहो। यह बड़ा पाजी है। जिससे कुछ लेना-देना नहीं, उसकी कल्पना में दौड़ता है। मन को सतत घेर कर आत्मचिंतन करो। आत्मा ही आत्मा का 'रूप' है। आत्मचिंतन और आत्मलीनता में ही परम शांति, मोक्ष और निर्वाण है। देह रहने वाली नहीं। देह के साथी-बराती और पदार्थ रहने वाले नहीं; फिर इनका चिंतन क्यों करे! जो मेरे साथ नहीं, वह स्मरणीय नहीं। स्मरणीय केवल स्व-चेतन-अस्तित्व है। समय भागा जा रहा है। इसी समय में अपने में दृढ़ स्थिति का अभ्यास करना है, और यह सब व्यर्थ स्मरण में जाये, तो इससे अधिक हानि और क्या हो सकती है? तस्मात् सदैव सावधान, आत्मरत-आत्मलीन।

\* \* \*

इस संकट भरे संसार, गर्भ, जन्म, शिशुपन-बालपन की दयनीय दशा, कौमार्य का भय संकुलित जीवन, जवानी का प्रमाद, बुढ़ापा का मोह और तृष्णा, जरजरता की विवशता, सर्वत्र के राग-द्वेष, कलह, आपाधापी, क्षीणता, खिन्नता, विनाश, दुख की सर्वत्र धारा। इस पीड़ा भरे जन्म-मरण और देह-माया को गंभीर विवेकवान पुनः नहीं चाहेगा। इस संसार में कहां सुख है? तृष्णा त्यागकर संतोष में सुख है। वस्तुतः देह से रहित अखण्ड मोक्ष पद ही सुखद है। इस जीवन में एक ही बात की विशेषता है—देहाभिमान पूर्णतया छोड़कर आत्मलीन रहना—हर क्षण आत्माराम—सर्वथा आत्मा में रमण। पांचों ज्ञानेन्द्रियों और मन से प्रतीतमान संसार का राग, तृष्णा एवं मोह त्यागकर निरंतर स्वस्वरूप में विश्राम।

पारख प्रकाश : जनवरी

## कर्मयोगी कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

(गतांक से आगे)

ज्ञान की पिपासा ने कबीर को बावरा बना दिया था। जहां कोई साधु-संत दिखा कि बस लग गया पीछे। उस दिन भी ऐसा ही हुआ था। कबीर नीरू के साथ बाजार से घर लौट रहा था। दीया-बाती का समय हो चुका था और घरों से दरवाजा-खिड़की के रास्ते निकलने वाला प्रकाश गली तक फैला हुआ था। जैसे ही वे जुलाहा पट्टी की ओर जाने वाले चौराहे पर पहुंचे तो देखा, चबूतरे पर कुछ संन्यासी भजन गा रहे हैं। बस फिर क्या था, नीरू से कहकर वह उनके पास जा बैठा। भजन के साथ इकतारा और खंजड़ी की खनकती लयबद्ध आवाज से वहां का सारा वातावरण गुंजायमान हो रहा था।

काया गढ़ के पंछी राम भज ले।  
तेरा मेरा क्या करता है दो दिन की जिनगानी।  
तू है कौन कहाँ से आया ये दुनिया है फानी।  
घात लगाये मौत खड़ी है छिन में खतम कहानी।  
राम भजन है सार जगत में सुमिरन कर ले प्राणी।  
काया गढ़ के पंछी राम भज ले।

जैसे ही भजन समाप्त हुआ कबीर साधुओं को प्रणाम करके बोला, “महाराज, मैं कुछ जानना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो पूछूँ?”

दीये की मद्धिम रोशनी में कबीर के मासूम चेहरे पर टंगी उत्सुकता देख साधु कुछ क्षण तक अपलक उसे निहारते रहे। वे यह सोचकर हैरान थे कि यह छोटा बालक आखिर क्या पूछना चाहता है? फिर प्रसन्न होकर बोले, “अवश्य पूछो बेटा, मगर पहले यह तो बताओ कि तुम्हारा नाम क्या है?”

“जी, मेरा नाम कबीर है। मैं जुलाहा हूँ। कहते हैं, ईश्वर सबका मालिक है। वह कैसा है, और कहां रहता है?”

सवाल सुनकर संन्यासी कुछ देर सोचते रहे। इस छोटी-सी उम्र में यह बालक सांसारिक उपलब्धियों की

ओर आकर्षित होने के बजाय, ईश्वर को जानना चाहता है। बड़ी अजीब बात है। अब तक जो भी उनके पास आया, सांसारिक भोगों की चाह लेकर ही आया था। किसी को धन चाहिए तो किसी को संतान। किसी को नौकरी चाहिए तो किसी को व्यवसाय में सफलता। कोई निरोग होने का आशीर्वाद चाहता था तो कोई यश-कीर्ति। कई तो अपना भविष्य जानने को व्याकुल थे। लेकिन यह तो उस रहस्य को जानना चाहता है, जिसे आज तक हम स्वयं ठीक से नहीं जान सके। आखिर क्या जवाब दें कबीर को?

कुछ देर की उथल-पुथल के बाद वे बोले, “बेटा कबीर, सच्चाई तो यही है कि हमने आज तक उस ईश्वर को देखा नहीं है। केवल अनुमान-कल्पना तथा पौराणिक गाथाओं के आधार पर ही मानते हैं कि जब यह संसार है तो इसका निर्माता कोई अवश्य होगा। उसी की शक्ति से यह सारी सृष्टि संचालित है। हम सब उसी मालिक के बंदे हैं। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा व्यापक है।”

सुनकर कबीर ने फौरन दूसरा सवाल दाग दिया, “उस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान मालिक के रहते हुए उसके अनगिनत बंदे खून के आंसू रोने को क्यों मजबूर हैं महाराज? बेचारों को दिन भर हाड़ तोड़ मेहनत करने के बाद भी पेट भर भोजन नसीब नहीं होता। उलटा लोग उन्हें नीच, अछूत कहकर तिरस्कृत करने से नहीं चूकते। क्या वे उसके बंदे नहीं हैं? और यदि हैं तो फिर वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर कहां छुपा बैठा यह अन्याय होते देख रहा है? नहीं महाराज, यदि इस दुनिया में सचमुच ऐसा ईश्वर होता तो सर्वत्र शांति होती। सब लोग सुखी होते। कोई छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच नहीं होता।”

इसी के साथ कबीर उन्हें प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ और जुलाहा बस्ती की ओर बढ़ गया। संन्यासी जी



महाराज अवाक् उसे जाते हुए देखते रह गये। सहसा उन्हें कुछ भी कहते नहीं बना था। कबीर के तर्क के आगे उनका ईश्वरीय ज्ञान बौना होकर रह गया था। उनके सारे साथी भी एकदम भौचक्रे थे। उनकी सारी उम्र की साधना को कुछ ही मिनटों में कबीर ने निरर्थक साबित कर दिया था। संन्यासी जी सोच में डूब गये। कहीं सचमुच उनकी मान्यता गलत तो नहीं है? कितने विश्वास और दृढ़ स्वर में कबीर ने उनकी मान्यता को खंडित कर दिया था!

संन्यासी जी और उनके शिष्य बहुत देर तक कबीर के विषय में सोचते और बतियाते रहे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि एक छोटा-सा बालक इस तरह के सवाल जवाब कैसे कर सकता है? उनके एक शिष्य ने कहा, “मुझे तो यह बालक किसी पूर्वजन्म का पुण्यात्मा जान पड़ता है गुरु जी! अन्यथा इस उम्र में कोई बच्चा ऐसा तार्किक निर्णय नहीं दे सकता। देखा था न आपने, कैसा तेज झलक रहा था उसके चेहरे पर!”

“निश्चय ही यह कोई सामान्य बालक नहीं है। मैं तो यही सोचकर हैरान हूँ कि वह दो टूक बात कहकर चला गया और हम देखते रह गये।” संन्यासी जी सचमुच चकित थे।

यह अत्यंत आश्चर्यजनक था कि कबीर के चले जाने के बाद भी संन्यासी और उनके शिष्यों को बहुत देर तक कबीर की उपस्थिति का एहसास होता रहा। संन्यासी जी उस रात बहुत बेचैन रहे। बार-बार उनके अंतस में कबीर की कही बातें गूंजती रहीं, और उन्हें लगता रहा कि कहीं वे गलत तो नहीं हैं?

इसके दूसरे दिन मालूम पड़ा कि गंगा के उस पार कुछ गोरखपंथी योगी आये हुए हैं तो कबीर स्वयं को रोक नहीं पाया। खोजते-ढूंढते पहुंचा तो देखा, बस्ती से दूर श्मशान के करीब आम के बगीचे में धूनी जल रही है। और सारे योगी अपने हाथों में नारियल का खप्पर लिए धूनी के चारों ओर नृत्य करते घूम रहे हैं। इनकी वेशभूषा अत्यंत विचित्र थी। गेरुवा वस्त्र पहने इन कनफटे योगियों के कानों में कुण्डल झूल रहे थे। गले में दो-तीन अंगुल की सेली में गुंथा काली सींग का नाद, शरीर पर भभूत, ललाट पर त्रिपुण्ड और सिर पर

जटा धारण किये इन योगियों के चेहरों पर योग साधना का एक अव्यक्त खौफ साफ झलक रहा था।

यह अगहन का महीना था और पश्चिम से चलने वाली ठंडी हवाएं शरीर को छूती हुई बह रही थीं। आकाश में कपास की तरह सफेद आवारा किस्म के कुछ बादल हवा के झोंकों के साथ इधर से उधर तैर रहे थे। सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था फिर भी वातावरण में ठंडकता शेष थी।

कबीर पर दृष्टि पड़ते ही एक योगी ने उद्घोष किया था, “अलख निरंजन।”

और इसी के साथ उन सब का ध्यान कबीर के ऊपर केन्द्रित हो गया था।

“आओ बच्चा, आओ।” उन योगियों का गुरु साधना छोड़ कबीर के पास पहुंच गया था। फिर उसका हाथ पकड़ धूनी के पास ले आया और अपने करीब बैठा लिया।

“बोलो बच्चा, कैसे आये?”

अब तक समस्त योगी उस धूनी के चारों ओर बैठ गये थे और सबकी दृष्टि कबीर के ऊपर टिक गई थी।

“योगी बाबा, मैं कबीर हूँ। नीरू जुलाहे का बेटा। आप लोगों से कुछ ज्ञान चाहता हूँ। यह अलख निरंजन क्या है?”

योगी गुरु कुछ क्षण तक कबीर को देखते रहे फिर बोले, “बच्चा, अभी तुम छोटे हो। ज्ञान की ये गूढ़ बातें तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगी। बहुत योग साधना के बाद ही अलख निरंजन का बोध होता है। जाओ, घर लौट जाओ। जब बड़े हो जाओगे तब आना।”

मगर कबीर अड़ गया और उसके मुख से एक कवित्त निकल गया—

प्रथमे पवन की पुहमी प्रथमे, प्रथमे पवन की पाणी।  
प्रथमे प्राण की सूर प्रथमे प्रभु, प्रथमे कौन निवाणी।  
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभु, प्रथमे बीज कि खेतं।  
प्रथमे दिवस के रैणि प्रथमे प्रभु, प्रथमे पाप कि पुण्यं।  
कहैं कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कछु आहि कि शुन्यं।

कवित्त सुनकर योगी बाबा का मुंह खुला का खुला रह गया। सारे योगी विस्फुरित नेत्रों से कबीर को घूरने लगे। फिर अचंभित गुरु बाबा ने कहा, “कबीर, तुम

निश्चय ही किसी पूर्वजन्म के अवधूत हो। तभी यहां खिंचे चले आये। मैं तुम्हें नाथपंथ की सारी साधना पद्धति का ज्ञान दूंगा।” और इसी के साथ एक बार अलख निरंजन के उद्घोष के साथ सारे योगी नृत्य करने लगे। गुरु बाबा के कहने पर कबीर के सारे कपड़े उतारकर उसे लंगोट पहना दिया गया। शरीर पर भभूत और माथे पर त्रिपुण्ड, गले में लटकता नाद। बाल को जटा की तरह बांध दिया गया। सिर्फ कानों में कुण्डल की कमी रह गई थी। अब योगी के वेश में कबीर भी उनके संग नृत्य करने लगा।

कबीर लगातार तीन दिनों तक गोरखपंथियों के साथ रहकर उनकी साधना पद्धति, उनका परम लक्ष्य अलख-निरंजन तथा हठयोगी क्रियाओं को आत्मसात करता रहा। गुरु बाबा बड़े जतन से कबीर के समक्ष नाथपंथ के तमाम गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करते रहे।

नाथपंथ के आदि प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् स्वयं शिव माने जाते हैं। इस पंथ में गुरु का स्थान सर्वोच्च होता है। उनका उपास्य सबसे न्यारा स्वयं ज्योति निरंजन है। न वह सृष्टिकर्ता है, न संहारक है। इनका परम पुरुषार्थ मोक्ष अथवा मुक्ति है। ये द्वैत और अद्वैत के द्वंद्व से निर्लिप्त हैं। नाथपंथी योगियों की योग क्रिया अत्यंत जटिल एवं आडंबरयुक्त है। एक तरफ तो ये सहजावस्था को प्राप्त करके उसमें स्थित होने की बात करते हैं, मगर दूसरी ओर ये घोर तांत्रिक क्रियाओं का आश्रय लेते हैं। केवल अवधूत की श्रेणी में पहुंचा योगी ही गुरु पद का अधिकारी होता है। यह अवधूत अत्यंत विशिष्टता लिए हुए होता है। उसके वाक्य-वाक्य में वेद निवास करते हैं। उसके पद-पद में तीर्थ बसते हैं। उसकी हर दृष्टि में मोक्ष विराजमान होता है। उसके एक हाथ में त्याग है और दूसरे हाथ में भोग है। फिर भी वह भोग और त्याग दोनों में अलिप्त है।

नाथपंथ के कर्मकांड एवं सिद्धांत का ज्ञान पाकर कबीर मुग्ध हो गया था। एक तरह से नीरू-नीमा की गोद में बैठकर कबीर उनके मुख से जो धर्म-चर्चा सुनता आया था उसकी अनुभूति उसे इन नाथपंथी योगियों के बीच हुई थी। मगर अवधूत की विशिष्टता को

उसका मन स्वीकार नहीं कर पाया था। योग और भोग दोनों एक साथ संभव नहीं है। यही सोचते हुए वह वापस काशी की ओर चल पड़ा। इधर कबीर के अचानक गायब हो जाने से जुलाहा बस्ती में मायूसी छाई हुई थी। लोगों ने तीन दिनों तक काशी का चप्पा-चप्पा छान लिया, मगर कबीर का कहीं पता नहीं चला था। चिंता में डूबे नीरू-नीमा की आंखों की नींद उड़ गई थी। न भूख लगती थी न प्यास। पता नहीं कहां किस हाल में होगा उनका बेटा? चौथे दिन उदासी में डूबी नीमा शाम के धुंधलके में दीया लेकर आंगन में निकल आयी थी, जैसे वह जानती थी कि कबीर लौट आया है। उसी समय एक नन्हें संन्यासी ने उसके आंगन में कदम रखते हुए उद्घोष किया था, “अलख निरंजन! माता, यह संन्यासी भूखा है। शीघ्र भोजन दो।”

उस संन्यासी के एक हाथ में खप्पर और दूसरे हाथ में त्रिशूल था। सारे शरीर में भभूत लगाये वह साक्षात् शिव की तरह मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। नीमा उसे देखकर खुशी के मारे रोने लगी फिर रोते-रोते हंसने लगी। फिर दौड़कर उसने कबीर को अपनी बांहों में भर लिया था, “यह क्या हालत बना रखी है तूने? और इतने दिन कहां था? क्यों हमें इस तरह रुलाता है कबीर? तुम्हारी चिंता में ये तीन दिन जैसे तीन युग की तरह बीते हैं। चल जल्दी से अपना ये स्वांग उतार और नहा-धो तभी खाने को दूंगी।” प्रफुल्लित नीमा भीतर जाकर झटपट भोजन की तैयारी में जुट गई थी। अब तक नीरू भी आंगन में निकल आया था। कबीर का हुलिया देख उसका सारा क्रोध और दुख पल भर में गायब हो गया था और वह भी जोरों से हंस पड़ा। कुछ क्षण पहले तक कबीर की खबर लेने का मनसूबा बांधता नीरू कबीर को आया देख सब कुछ भूल गया था।

भोजन के पश्चात् जब नीरू ने पूछा कि वह इतने दिनों तक कहां था, तब कबीर के मुख से नाथपंथी योगियों की योग क्रिया तथा उनका परम लक्ष्य मोक्ष के विषय में सुनकर वे दोनों अत्यंत अर्चिभित रह गये थे। उन्हें तो बस इसी बात की खुशी थी कि कबीर लौट आया था।

## साधु की कुछ रहनियां

जो साधना में चलता हो वह साधु है और जो साधना में परिपक्व होकर स्वरूपस्थ हो गया हो वह सन्त है; ये सभी वन्दनीय और श्रद्धेय हैं; परन्तु जो पुनीत साधु-वेष धारणकर उसके उलटा आचरण करने वाले हैं, वे शोचनीय हैं तथा दण्ड के पात्र भी।

कितने साधु-वेषधारियों का उद्देश्य न तो आत्मकल्याण है और न समाज-कल्याण; अपितु उनका उद्देश्य है—खाना, मनमाना घूमना, पुजवाना तथा मठ-मन्दिरों में धन-सम्पत्ति जोड़कर भोग-विलास करना। ऐसे साधु नामधारी अपने और समाज के लिए बिगड़ी घड़ी बनकर बहुतें के पतन का कारण बनते हैं। साधुओं में मठधारी अच्छे होते हैं या विचरणशील, इसका कोई नियम नहीं। कितने ही मठाधीश विषयासक्त, लड़ाकू तथा प्रपंची हैं, तो कितने विचरणशील भी ऐसे ही हैं; और कितने विचरणशील साधु-वेषधारी सदाचारी, ज्ञान-वैराग्य-प्रिय तथा समाज-सेवक हैं तो कितने मठाधीश भी इस कार्य में संलग्न हैं। न विचरणशीलता दूषित है और न मठवास। उद्देश्य दूषित होने से सब दूषित हो जाता है।

साधु-समाज में जो पतनशील वेषधारी हैं उनका बहुत कुछ उत्तरदायित्व गुरुजनों पर है। यदि गुरुजन शिष्यों को बहुत काल साधना में कसकर, पूर्ण शिक्षित-दीक्षित करके वेष दें तो पतन की इतनी मात्रा न आये। यदि गुरुजन कड़ाई का बरताव करने लग जायें, तो गंदे लोग समाज में घुसने ही न पायें। यदि कोई गंदा हो गया हो तो वह सुधर जायेगा या निकल जायेगा।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पतित को उठाया ही न जाये। पतित को उठाना चाहिए, उनको प्यार करना चाहिए, उनको उत्तम मानव तथा स्वभाव से साधु बनाना चाहिए; परन्तु उनको शीघ्रता से साधु-वेष देने की क्या आवश्यकता! यदि वे सुधर कर ज्ञान-वैराग्य में दृढ़ हो गये तो वेष के अधिकारी स्वयं हो जायेंगे अन्यथा घर लौट जायेंगे। पहले ही वेष धारण कर लेने पर यदि आगे साधना से न चल सके तो उन्हें घर लौटने में लज्जा होगी और साधु समाज में ठीक से रह नहीं पायेंगे। ऐसे लोग समाज को दूषित बनायेंगे।

कितने रंगे सियार साधु-वेषधारी गुरु-आज्ञा, श्रद्धा, भक्ति, सेवा, साधना तथा ज्ञान-वैराग्य को तिलांजलि देकर मनमाना घूमते, मनमाना व्यवहार बरतते हैं। वे वैराग्यवान सन्तों से प्रेम न करके कुसंग में, स्त्रियों में प्रेम करते हैं।

विवेकवान संत कभी-कभी अकेले घूमते हैं, परन्तु वे वैराग्यपूर्वक रहते हैं; लेकिन कितने मलिन वेषधारी अकेले घूमते और जहां-तहां चेलियों, स्त्रियों के बीच में रहने की चेष्टा करते हैं। उन पर संसार थू-थू करे इसका उनको डर नहीं। वे नाक कटाकर पूरे निर्लज्ज हो जाते हैं। असावधानी में जिसके पैर फिसल जायें, वह तो पुनः सुधर सकता है; परन्तु जान-बूझकर गिरने वाले अहंकारी, विपथगामी वेषधारियों का सुधार होना अत्यन्त कठिन है। ऐसे लोग यदि विनम्रतापूर्वक अपना सुधार करते हैं तो ठीक है, अन्यथा साधु-समाज तथा गृहस्थ-समाज को चाहिए कि ऐसे लम्पट वेषधारियों का समाज से तुरन्त बहिष्कार कर दें।

‘बज्र अस रांड या बज्र अस अहिवाती’ घर में रहो तो सदगृहस्थ बनो और घर का त्याग करो तो पूर्ण वैराग्यवान बनकर निज-पर की शांति के कारण बनो। बिना जाने-समझे सती होने का स्वांग न रचो कि आंच लगने पर चिता से उठकर भागना पड़े।

कितने साधु वेषधारियों का पहले लक्ष्य ठीक रहता है; परन्तु वे आगे चलकर मान-बड़ाई तथा धन-वैभव पाकर विषयासक्त हो जाते हैं। इन्हीं वस्तुओं को विवेकवान लोक-कल्याण में लगाकर इनका सदुपयोग करते हैं। गृहस्थों को चाहिए कि साधारण साधु तथा साधकों को जीवन-निर्वाह की वस्तुएं तो दें, परन्तु उन्हें मान-बड़ाई विशेष न दें; और जो साधनापथ से विपरीत चलने वाले कुसंग प्रेमी हैं, उनसे सर्वथा दूर रहें।

जो साधु-वेषधारी विवेकवान गुरु-संत से विमुख, हठी, मदी, मनमती होकर अकेले घूमते, स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ना चाहते, स्त्रियों से शरीर की सेवा लेते—उन्हें दूर से ही त्याग दें। कितने वेषधारी गृहस्थों से पुजा कर अपने स्त्री-बच्चों को पोषते हैं। ऐसे वेषधारी समाज

के लिए अभिशाप हैं। ये कचड़हे साधु वेषधारी ही सच्चे संतों के नाम में भी धप्पा लगाते हैं। उन्हें अपने में सुबुद्धि लानी चाहिए और सन्तगुण भूषित होना चाहिए।

अपने मन-इन्द्रियों पर स्ववशता प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला व्यक्ति ही साधु है। साधु का उद्देश्य ही होता है स्वयं अन्तर्मुख होकर शांति की प्राप्ति करना तथा अपने आचरणों और प्रवचनों द्वारा दूसरों को शांति प्रदान करना। अतएव साधु का जीवन बड़ा सात्त्विक, सरल, पवित्र और आदर्शमय होना चाहिए।

साधु को चाहिए कि वह अपने पूर्व गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध न रखे। साधुवेष ले लेने के बाद माई-दाई और बाल-बच्चों से सम्बन्ध अत्यन्त अनुचित है। घरवालों को चेताने की दृष्टि से भी जो साधु अपने जन्म-स्थान पर जाकर अड्डा बना लेता है, उसका भी वैराग्य धीरे-धीरे ठण्डा पड़ने लगता है।

साधु को चाहिए कि वह विवेकवान सन्तों का आधार लेकर भ्रमण करता रहे या किसी सन्त-आश्रम में रहकर सेवा, भक्ति, पठन-पाठन करते हुए वैराग्य-ज्ञान का अभ्यास करे। वह जहां तक सम्भव हो स्वयं आश्रम-निर्माण एवं कुटी बनाने के चक्कर में न पड़े। साधु का काम है कि वह चिन्तामुक्त होकर अपना और समाज का कल्याण करे।

यदि किसी कारणवश साधु को स्वयं आश्रम या कुटी निर्माण करके रहना ही पड़े तो उसके लिए वह किसी प्रकार दम्भपूर्वक या हठसहित धन का संग्रह न करे। सहज प्राप्त धन से निर्वाह करे। कुटी-आश्रम को धर्मशाला समझकर उनमें आसक्त न हो।

साधु-महन्तों का कर्तव्य है कि वह कुटी-आश्रमों में साधुनी, दासी आदि किसी रूप में भी स्त्रियों को न रखे। जिस कुटी-आश्रम में स्त्रियां रहेंगी वहां के साधु-महन्तों पर जनता चरित्रहीनता का आरोप करेगी, और कुसंग में स्वाभाविक पतन होता रहता है।

आश्रमधारी साधु-महन्तों का कर्तव्य है कि वे हानि, कष्ट और अपमान सहनकर जितना बन सके क्षमाशील रहें, क्योंकि थोड़ी-थोड़ी बातों को लेकर सबसे लड़ते रहना, मुकदमेबाजी करना साधु-समाज की

शोभा के विरुद्ध है। जैसे सम्पत्ति सम्बन्धी मुकदमे आश्रमधारियों को लड़ने पड़ सकते हैं; परन्तु उसमें भी यथासम्भव बचाने की चेष्टा करनी चाहिए और सभ्यता से समस्या का समाधान ढूंढना चाहिए।

आश्रमों में आये हुए सन्तों और अतिथियों का भरसक सत्कार होना चाहिए। आश्रम एवं कुटी की सम्पत्ति किसी-न-किसी प्रकार जनता द्वारा आयी है, इसलिए आश्रमधारी साधु-महन्तों को उसे अपनी निजी सम्पत्ति नहीं मानना चाहिए। आश्रमों में सभी मत के संतों का सत्कार होना चाहिए। साम्प्रदायिक गंध बिलकुल नहीं होना चाहिए। हां, पाखण्डी और उपद्रवी साधु वेषधारियों से दूर रहना चाहिए।

कितने साधु समझते हैं कि कुटी-आश्रमों में रहकर मोटे-मोटे काम-धन्धा करना पाप है। वे झाड़ू लगाने में भी हिंसा मानते हैं; परन्तु यह धारणा गलत है। यदि अपने हृदय में किसी जीव की हत्या करने का भाव नहीं है तो व्यवहार में न चाहते हुए जो व्यक्ति के कर्मों से झीने-झीने जीव मर जाते हैं उसमें न उसको अपराध लगाना चाहिए और न वह हिंसा कहला सकती है और इससे तो कोई बच नहीं सकता। शरीर की अत्यन्त आवश्यक क्रियाएं—भ्रमण, भोजन, शयन, टट्टी-पेशाब-त्याग आदि में भी न चाहते हुए छोटे-छोटे जीव मर जाते हैं; परन्तु उक्त क्रियाओं का त्याग कर पाना असम्भव है।

कुटीधारियों को आश्रम-निर्माण, आश्रम की सफाई, बाग-बारी की सेवा, खेती का काम करना बुरा नहीं, अपितु ये पवित्र कार्य हैं। आश्रमधारियों को चाहिए कि वे डट करके सहज प्राप्त व्यवहार कुशलता से करें। आश्चर्य है कितने साधु-वेषधारी दिन-दिन बैठे गप्पें लड़ायेंगे, राग-द्वेष की चर्चा करेंगे, व्यर्थ आलस्य-निद्रा में पड़े रहेंगे और अनेक अनर्थकारी भी कार्य करेंगे; परन्तु आश्रमों की सेवा करने में अपनी हेटाई और छोटाई समझेंगे। कितने लोग कहते हैं हमने सब कुछ त्याग दिया, हम साधु बन गये तो भी वही मोटा व्यवहार करें; परन्तु भाई! अभी भी तुम खाते हो, पहनते हो, मकानों में रहते हो तब क्या काम-धन्धा छोड़ देना ही साधु होना मान लिया जाये!

खाने-सोने के बाद हर समय मोटे काम-धन्धे में ही लगे रहना गृहस्थ को भी अच्छा नहीं, फिर साधु के लिए अच्छा कैसे होगा! गृहस्थ को भी कुछ समय अपनी-अपनी बुद्धि-श्रद्धा के अनुसार पठन-पाठन, साधन-भजन, एकान्त सेवन, ध्यान और शान्ति दशा में बिताना चाहिए और साधु का तो वह मुख्य काम ही है। जिस साधु-आश्रम में केवल व्यवहार की प्रधानता हो जाती है उसका आदर्श गिर जाता है। यदि तत्काल सावधानी न बरती गयी तो वह गृहस्थी का रूप ग्रहण कर लेता है। साधु-आश्रम का व्यावहारिक पक्ष गौण और पारमार्थिक पक्ष मुख्य होना चाहिए।

आश्रमधारी सन्तों को नियम बना लेना चाहिए कि हम इतने घण्टे आश्रम के काम करेंगे और इतने घण्टे तथा इतने-इतने समय पूजा-पाठ, सत्संग, कथा, ध्यान व एकान्त-चिन्तन में बितायेंगे। हर साधु-आश्रम में उसके सिद्धान्तानुसार नित्य नियमित पूजा-पाठ और कथा-सत्संग अवश्य होने चाहिए। बहुत आश्रमों में पूजा-पाठ तक नहीं करते, कुछ में दिखावे के लिए करते हैं और कुछ सही ढंग से करते हुए भी उतने में ही अपना काम पूरा मान लेते हैं। परन्तु हर साधु-आश्रम में चौबीस घण्टे में दो या एक बार अवश्य सत्संग-कथा होने चाहिए जिससे आश्रमवासी साधक-साधुओं तथा अगन्तुकों को मानसिक खुराक मिलती रहे।

आश्रमधारी साधु-महन्तों को सरकारी कर्मचारियों से व्यवहार मात्र के लिए सम्बन्ध रखना चाहिए। स्वार्थ में लाभ मानकर अधिक सम्बन्ध बढ़ाने से दोष आना सम्भव है। हां, शुद्ध धर्मोपदेश देने के लिए सत्संग की दृष्टि से सम्बन्ध रखा जा सकता है; परन्तु उसमें भी विवेकपूर्वक ही।

जिसका स्वरूप मक्कारी से भरा है ऐसे राजनीति के चक्कर में साधु को बिलकुल नहीं पड़ना चाहिए। चुनाव के समय किसी की ओर से प्रचार करना साधु-महन्तों के लिए लज्जाजनक है और ऐसा करने के मूल में या तो भोलापन रहता है या भद्दी स्वार्थपरता। साधुओं को गृहस्थों से अधिक स्वार्थिक सम्बन्ध नहीं बढ़ाना चाहिए। उसे सबसे धर्म का सम्बन्ध ही बढ़ाना चाहिए। ज्ञान का आदान-प्रदान करना ही उसका मुख्य काम है।

आश्रमधारी साधु विचरणशील साधुओं को तुच्छ न समझकर उनका सम्मान करें, इसी प्रकार विचरणशील साधु आश्रमधारी साधु-महन्तों को तुच्छ न समझकर उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखें।

आश्रम में या विचरते हुए साधुओं को चाहिए कि वे स्त्रियों की संगत से सावधान रहें, अर्थात् उनसे अभिन्न व्यवहार न करें। मन पवित्र होते हुए भी ऐसा व्यवहार न करे जो लोकदृष्टि में हेय हो। गांव और घर में ऐसी एकान्त जगह में आसन न लगावे, जहां पुरुष न हों केवल स्त्रियां हों। साधु का आसन वहां होना चाहिए जहां स्त्रियां बिलकुल न हों। वह स्त्रियों से निकट सेवा न ले। जो साधु-संन्यासी नामधारी स्त्रियों से पैर दबवाते तथा अन्य अभिन्न व्यवहार बरतते हैं वे साधु मानने योग्य नहीं हैं।

साधु भक्तों एवं गृहस्थों के यहां जाकर उनसे किसी प्रकार की याचना न करे। घी, दूध, उत्तम चावल, वस्त्र, द्रव्य आदि किसी प्रकार की वस्तु न मांगे। भक्त जो अपनी श्रद्धा से दे सके उसमें ही सन्तोषपूर्वक निर्वाह ले। साधु एवं महंतों को यह विधान न बनाना चाहिए कि भक्त इतनी दक्षिणा दे। भक्त अपनी ओर से जो सेवा करे उसी में प्रसन्न रहना चाहिए।

हर साधु किसी सम्प्रदाय व पन्थ में दीक्षित होता है उसे चाहिए कि वह उसके आचरणों का पालन करे, परन्तु साम्प्रदायिक भावनाओं से ऊपर हो। मैं संन्यासी, मैं कबीरपन्थी, मैं वैष्णव आदि मानकर उसका अहंकार और दूसरे पर घृणादृष्टि न करे। हर मत के साधु भाई-भाई हैं। उन्हें परस्पर भाईचारे का व्यवहार करना चाहिए।

साधु-संन्यासियों को चाहिए कि वे चेलों के लिए न लड़ें। कितने साधु-संन्यासी अपने चेलों को ऐसे घेरे में रखना चाहते हैं जिससे वे दूसरे गुरुजनों से न मिल सकें। यह बड़ी संकुचित भावना है। “हमारे भक्त के घरवालों को अमुक ने क्यों अपना भक्त बना लिया, हमारे भक्त को अमुक ने क्यों साधु बना लिया”, इन छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ना साधुता के विरुद्ध है। यहां किसी की घरौंदाबन्दी रह नहीं जाती। घरौंदा बन्दी करने वाले व्यर्थ बदनाम होते हैं। पंचग्रन्थी के रचयिता ‘श्री रामरहस साहेब’ के वचनों में कहें तो जो

गुरु अपने भक्तों से केवल अपने को ही मनवाने के लिए और दूसरे गुरु के पास न जाने के लिए मुचलिका लिखाते हैं वे भौंदू हैं, ऐसा उन्हें नहीं करना चाहिए।

साधु को अकेले न विचरना चाहिए। अकेले विचरने वाले साधु प्रायः उद्वण्ड, आरामतलब और आलसी हो जाते हैं। अकेले में किसी का अंकुश न रहने से वे अपनी साधुता के विरुद्ध रहनी में चलने लगते हैं और उनमें कुछ चरित्र-भ्रष्ट भी हो जाते हैं। शेष अधकचरे बनकर भटकते हैं। अतएव साधुओं को चाहिए कि वे सदैव विवेकी सन्तों के साथ में विचरण करें या मठों में रहें।

ज्योतिष का जंजाल लिए घूमना, भूत-प्रेत, ग्रहबाधा आदि दूर करना, झाड़-फूंक, यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रादि करना, किसी का भविष्य बताना, हस्तरेखा देखना, आशीर्वाद-शाप देना, चमत्कार दिखाना, अलौकिक कही जाने वाली उन घटनाओं को घटाना जिसमें चारसौबीसी तथा मक्कारी के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है—ये सब काम साधु का नहीं है।

साधु-संन्यासियों को चाहिए कि वे सारे संसार को चेताने की तृष्णा न करें, क्योंकि यह एक महाभ्रम है। सारा संसार चेत नहीं सकता। उन्हें प्रवचन देने का असंतोष न होना चाहिए। आवश्यक होने पर श्रोताओं की जिज्ञासा देखकर साधु-संन्यासी प्रवचन दें।

साधु-संन्यासियों के प्रवचन की शैली राजनीतिज्ञों की तरह नहीं होना चाहिए जो बहुधा होश में नहीं अपितु हाथ-पैर पटककर और गला फाड़कर जोश में दिये जाते हैं। साधु-संन्यासी खड़ा होकर प्रवचन दे सकता है, परन्तु बैठकर दे तो अच्छा है। प्रवचन देते समय आलोचना से सुधार नहीं होता। आलोचना न्यायपूर्ण हो, समय और वातावरण के अनुकूल हो तथा वचनों में मधुरता हो—प्रवचन में इन सब पर ध्यान देना चाहिए। प्रवचन करते समय किसी तकियाकलाम का प्रयोग नहीं करना चाहिए; जैसे—मतलब, जौन है तौन, जो है कि, का कहते हैं कि, इत्यादि। ये सब प्रवचन को भद्दा कर देते हैं।

ऐसे प्रवचन नहीं होना चाहिए जिससे जनता में राग-द्वेष बढ़कर अशांति हो। जनता में अनेक स्तर के

लोग हैं, अतएव आम समाज में प्रवचन देते समय प्रवक्ता को यह ध्यान होना चाहिए कि उसके प्रवचन से हर स्तर के लोग लाभ उठा सकें।

साधु-संन्यासी को प्रवचन करते समय आसन स्थिर रखना चाहिए। हाथ, पैर, सिर, भौं, आंख सब गम्भीर और निश्चल रखना चाहिए। दूमना, मटकाना, चमकाना, वाक्यव्यायाम करना आदि साधु-संन्यासियों को अशोभनीय है। साधु-संन्यासियों को अपने प्रवचन में राजनीति नहीं घुसेड़ना चाहिए। उन्हें गम्भीर मुद्रा में व्यवहार और परमार्थ पर प्रवचन देना चाहिए।

कितने साधु-वेषधारी गांजा, भांग, बीड़ी, सिगरेट पीते हैं, तम्बाकू-पान खाते हैं तथा अन्य अनेक व्यसनों के शिकार होते हैं। इससे उनका अपना और समाज का पतन होता है; अतएव ये सब वस्तुएं साधु-संन्यासियों के लिए सदैव वर्जित हैं। उसे चाय, पान, होटल का भोजन आदि कभी नहीं ग्रहण करना चाहिए। मांस, अण्डा, मछली, शराब, अफीम आदि घृणित वस्तुओं का त्याग यदि साधु न कर सके जो सद्गृहस्थ को भी त्याग देना चाहिए तो फिर वह साधुता की अगली मंजिल पर क्या चढ़ सकता है! साधु को परदोष-दर्शन, परनिन्दा, चुगली-चारी नहीं करनी चाहिए। किसी की मान-बड़ाई तथा पूज्यता देखकर उसकी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। साधु का हृदय सरल तथा पवित्र होना चाहिए।

साधु-संन्यासियों को हर समय भीड़-भाड़ और गृहस्थों में समय नहीं बिताना चाहिए। वह केवल भोजन लेने के लिए और ज्ञानोपदेश देने के लिए गृहस्थों और भीड़ में जाये, शेष समय एकान्त में रहकर पठन-पाठन, सत्संग, ध्यान तथा एकाग्रता में समय व्यतीत करे।

अध्यात्म की एक उच्चतम दशा है कुछ न करना। दूसरी दशा है करना, परन्तु कहीं आसक्त न होना, राग-द्वेष न करना, घबराना नहीं। पहली वाली दशा के अधिकारी बहुत कम साधक होते हैं। उसकी नकल करके साधक का पतन होता है अर्थात् जो आलस्यवश कुछ न करने का ढोंग करता है, उसकी दशा अच्छी नहीं रहती। जीवन गुजर के अलावा कोई काम न करना और केवल स्वरूपविचार एवं आत्माराम में निमग्न रहना अत्यन्त उच्च साधक का काम है। शेष साधकों के लिए

यही अच्छा है कि वे अपनी-अपनी जिम्मेदारियां निभायें और उनमें आयी हुई कठिनाइयों को सहें तथा अपने आपको धैर्यवान बनायें। कुछ जो उच्चतम साधक होते हैं वे हर समय केवल अपने आप में शान्त रह सकते हैं। यदि वे सब समय समाधि में ही निमग्न रहें तो उनसे समाज को बहुत बड़ी प्रेरणा मिलती है और वे स्वयं कृतार्थ रूप होते हैं।

स्वरूपज्ञान की प्राप्ति, विषयों से दृढ़ वैराग्य तथा मन की पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करके स्वरूपस्थिति में निश्चलता—यही साधु-संन्यासी का उद्देश्य है। उसे चाहिए कि वह इसे प्राप्त करे और इसके द्वारा अन्य मनुष्यों को सत्प्रेरणा देकर उन्हें सन्मार्गगामी बनाये।

\* \* \*

कुछ परिश्रमी एवं तेजवान संत पुरुष होते हैं जिनके परिश्रम एवं प्रभाव से संत-मठों की स्थापना हो जाती है। उनके जीवन-काल में वे ठीक चलते हैं। कहीं-कहीं तो उनके उत्तराधिकारीगण उनका अधिक विकास कर जाते हैं, परन्तु अनेक मठों की दशा आगे चलकर दयनीय हो जाती है।

चाहे गृहस्थ आश्रम हो या विरक्त आश्रम, उनके सदस्यों में जब तक त्याग, परस्पर प्रेम, विश्वास तथा सेवा का भाव रहता है, तब तक वह अच्छा चलता है और जब इनका अभाव होने लगता है, तब बिखराव होने लगता है।

विरक्त आश्रम के गुरु एवं अनुशासकों को चाहिए कि वे आश्रम में ऐसे लोगों की भरती न करें जो भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य में निष्ठा रखने वाले न हों। स्वार्थी, अहंकारी, अध्यात्म-निष्ठाहीन तथा अश्रद्धालु को समाज एवं आश्रम में स्थान देना समाज एवं आश्रम को बरबाद करना है। अतएव किसी भी प्रलोभन में पड़कर ऐसे लोगों की भरती समाज एवं आश्रम में नहीं करनी चाहिए। यदि समाज में आगे चलकर ऐसी प्रवृत्ति पनपने लगे तो उनको निकाल बाहर करना चाहिए।

ध्यान रहे, संस्था एवं समाज को तोड़ने के लिए एक खलनायक काफी है। परिवार, समाज एवं संस्था

के वृद्धों तथा समझदार संरक्षकों को चाहिए कि वे समाज में विध्वंसक प्रवृत्ति न पनपने दें। जिनमें विध्वंसक एवं समाज-विरोधी विचार पायें उन्हें तत्काल हटा देने का प्रयत्न करें। ध्यान रहे, ऐसे दुष्ट तुम्हारी संस्था में रहकर नुकसान करेंगे। उन्हें निकाल देने पर वे कुछ नहीं कर सकते।

यदि समाज का कोई साधुवेषधारी खल निकलता है तो उसे समाज से निकाला जा सकता है, परन्तु यदि समाज का गुरु एवं अनुशासक महंत आदि ही स्वार्थी, विषयी एवं आध्यात्मिकता से शून्य है तो आश्रम का विध्वंस रखा रखाया है।

आप समाज के व्यवस्थापक, गुरु या महंत हैं और साथ ही आप अत्यन्त साधु हैं, क्षमा, दया, करुणा, त्याग की मूर्ति हैं, परन्तु ध्यान रहे आपको भी ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो एड़ी से चोटी तक दुष्टता से पूर्ण होंगे। आप उनका उपकार एवं हित करेंगे, परन्तु वे आपकी निन्दा करेंगे, आपको पीड़ा देना चाहेंगे, आपके समाज, संस्था एवं मिशन को तोड़ने का प्रयास करेंगे।

आप उन्हें प्यार देना चाहेंगे, आप उनका सब प्रकार से हित करना चाहेंगे, परन्तु वे आपके सब कुछ को उच्छिन्न करना चाहेंगे। ध्यान रहे, आप हजार चाहकर भी उनको सुधार नहीं पायेंगे। जैसे सांप को दूध पिलाइये तो उसका विष बढ़ेगा, वैसे आप उनका हित करेंगे और वे आपका विरोध एवं निन्दा करने में लगे रहेंगे।

ध्यान रहे, ऐसी स्थिति में घबराने की आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसे खल व्यक्ति आपके परिवार एवं समाज से बाहर हैं, तो वे आपकी हजार निन्दा एवं विरोध करके कुछ नहीं कर पायेंगे। वे स्वयं मुंह के बल गिरेंगे। वे आपका जितना विरोध करेंगे उतना स्वयं क्षीण होंगे। आप यह नहीं चाहेंगे कि वे गिरें, उनका पतन हो, परन्तु वे अपनी खोटी करनी से गिरेंगे। गिरने के अलावा उनकी अन्य दशा ही नहीं है। गलत कर्म करने वाला गिरेगा ही।

यदि आपके पास में रहने वाला कोई खल स्वभाव का है, तो उसकी संगत का त्याग करो। जानबूझकर

दुष्ट-संगत न करो। आपके पास कोई सज्जन बनकर दुर्जन आ सकता है। जब उसकी दुर्जनता का खुलासा हो जाये, तब उसका त्याग कर दो। दुर्जन की संगत त्यागने में संकोच न करो, अन्यथा अपनी साधना में विघ्न पड़ेगा। अन्य सज्जन साथियों को तकलीफ होगी। कम समझ वालों का अहित होगा।

ध्यान रहे, तुम्हारी संस्था एवं समाज को तोड़ने वाले तुम्हारी संस्था एवं समाज में रहने वाले दुष्ट ही हो सकते हैं। बाहर के दुष्ट तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सकते। 'घर का भेदिया लंका ढावे' प्रसिद्ध कहावत है।

यदि तुम्हारी संस्था एवं समाज में सज्जन के वेष में दुष्ट घुस आये हैं, तो उन्हें निकाल बाहर करने में जरा भी संकोच मत करो। वे जितने दिन संस्था एवं समाज में रहेंगे, उन्हें हानि पहुंचायेंगे। यह मत संकोच करो कि यदि उन्हें निकाल दिया जायेगा तो बाहर जाकर तुम्हारी संस्था एवं समाज की निंदा करके तुम्हारी हानि करेंगे। वे तुम्हारी निंदा करके कुछ नहीं कर पायेंगे। उनकी निंदा-प्रवृत्ति तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ कर पायेगी, अपितु उनका ही नुकसान करेगी।

जो बेसमझ है, श्रद्धाहीन है तथा व्यवस्था में दोष देखने की प्रवृत्ति वाला है, उसे सर्प से भी भंयकर समझकर उसका त्याग करना चाहिए। जो श्रद्धा, समझ एवं सेवा परायण तथा समर्पित व्यक्ति है, जिसने संस्था एवं समाज की व्यवस्था में दीर्घकाल तक अपना पसीना बहाया है, वही व्यवस्था में आयी हुई त्रुटियों का परिमार्जन करने के लिए प्रयत्न करेगा। खल एवं स्वार्थी व्यक्ति तो उच्छृंखलतापूर्वक व्यवहार करने के लिए व्यवस्था एवं नियमों का विरोध करता है।

तथागत बुद्ध के शरीरांत के समय जब साधु लोग दुखी होने लगे तथा कितने रोने लगे, तब सुभद्र नाम का एक अभद्र भिक्षु (साधु) उछलकर कहने लगा कि आप लोग दुखी क्यों होते हैं! भगवान बुद्ध मर गये तो अच्छा हुआ। वे हर समय कहा करते थे कि यह न करो, यह न खाओ, ऐसा न रहो। अब हम स्वच्छंद हो गये हैं। अब जैसा मन चाहेगा वैसा करेंगे, जो मन चाहेगा वह खायेंगे और जैसा मन चाहेगा वैसा रहेंगे।

सुभद्र की उक्त उन्मादी बातें सुनकर ही संघ के समझदार एवं वृद्ध संत संशक हो गये थे, और उन्होंने सोचा था कि जल्दी ही तथागत के उपदेशों को संग्रहीत कर लिपिबद्ध कर लेना है, अन्यथा उन्मादी लोग भगवान बुद्ध के अनुशासन को ही नष्ट कर देंगे।

यदि किसी सदस्य से वासना-वश, कामना-वश कोई गलती हो गयी और यदि वह निष्कलता, सरलता एवं विनम्रता से गलती स्वीकार कर अपना कल्याण चाहता है और संस्था, समाज एवं उनकी व्यवस्थाओं के प्रति पुनः समर्पित हो जाता है तो उसका स्वयं का सुधार हो सकता है तथा उसके द्वारा संस्था एवं समाज का भी कोई अहित नहीं होगा। परन्तु जो श्रद्धाहीन है, समझरहित है, व्यवस्था-विरोधी है, नियमों का उल्लंघन करने वाला है, वह संस्था और समाज का शत्रु है। उसे अति शीघ्र संस्था एवं समाज से निकालकर बाहर कर देना चाहिए।

ध्यान रहे, शिष्य एवं सदस्य बढ़ाने की चेष्टा कभी मत कीजिए। संस्था एवं समाज में कम-से-कम सदस्यों का रहना कोई बुरा नहीं है, किन्तु ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे का इकट्ठा होकर समाज बढ़ जाना तथा उनके द्वारा संस्था एवं समाज में विकृति आना अत्यन्त अहितकर है। संस्था के लिए श्रद्धा, समझ एवं समर्पण बुद्धि वाले थोड़े ही सदस्य काफी हैं। बेसमझ तथा श्रद्धाहीनों की भीड़ संस्था को नष्ट ही करती है।

ध्यान रहे, प्रकृति बुरे को त्यागकर केवल अच्छे का ही चुनाव करती है। आपके शरीर में यदि कहीं फोड़ा हो जाये, तो वह आपके शरीर एवं स्वास्थ्य का अंश नहीं बन सकता। वह थोड़े दिनों में फूटकर बह जायेगा। विकृत-अंश कभी स्वास्थ्य का अंश नहीं बनता। दूसरे को उखाड़ने का प्रयत्न करने वाला थोड़े दिनों में स्वयं उखड़ जाता है।

साधुओं का चाहे छोटा आश्रम हो या बड़ा, उसे संस्था बनाकर उसकी सारी सम्पत्ति संस्था के नाम पर ही रखना चाहिए, और संस्था का संचालन कमेटी के द्वारा होना चाहिए। इससे संस्था की सम्पत्ति कोई एक



आदमी बेच नहीं सकेगा। कमेटी के अधिकारी सदाचारी संत होना चाहिए।

बहुत-से मठ एवं आश्रम इसलिए नष्ट हो रहे हैं कि अब उन पर त्यागी संतों, महंतों एवं गुरुओं का अभाव है। मठ की सारी चल तथा अचल सम्पत्ति व्यक्तिगत महंतों के नाम पर है और वे महंतगण उसे बेच-बेचकर भोग-विलास में उड़ाते, अपने घरवालों, भाई-भतीजों को खिलाते और देते हैं।

साधु के पास जितनी सम्पत्ति चाहे चल हो या अचल इकट्ठी है, उसे उसको अपनी व्यक्तिगत नहीं मानना चाहिए। उसे गृहस्थों ने संत-सेवा एवं जन-सेवा के लिए दिया है। वह न उसका भोग-विलास करने का अधिकारी है और न उसे अपने माने गये पूर्व गृहस्थाश्रम वालों को खिलाने या देने का अधिकारी है। वह सम्पत्ति संत-समाज एवं जनसमाज की है। इसलिए उसका ट्रस्ट बनना चाहिए। वह संस्थागत होना चाहिए।

कुछ संत-महंत अत्यन्त सावधान होते हैं। उनके पास लाखों की चल-अचल सम्पत्ति होती है, परन्तु वे उसे जीवन भर केवल अपने व्यक्तिगत नाम पर ही रखते हैं। वे समझते हैं कि हम यदि संस्था बनाकर उसके नाम लिख देंगे, तो हमारा कोई अधिकार नहीं रह जायेगा और हम अभी मर नहीं रहे हैं। हमें तो कम-से-कम सौ वर्ष जीना है।

ऐसे सावधान संत-महंत एक दिन मर जाते हैं और उनकी छोड़ी सम्पत्ति झगड़े का कारण बनती है और स्वार्थी तथा संसारी बुद्धि वाले चले आपस में लड़कर सम्पत्ति बरबाद कर देते हैं, और शुभ काम के लिए जनता की दी हुई चीज अशुभ में लग जाती है।

कुछ संत-महंत तो इतने सावधान होते हैं कि उनकी सावधानी की डिग्री बतायी ही नहीं जा सकती। वे तो कभी सोचते ही नहीं हैं कि हमारे पास इकट्ठी हुई लाखों की सम्पत्ति पीछे बरबाद हो जायेगी। उनको तो जैसे लगता है कि वे उसे लेकर संसार से जायेगे। वे न किसी को व्यक्तिगत ही अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं और न संस्था बनाकर उसको लिखते हैं। वे क्या सोचते हैं, वे ही जानें!

## जीवन पथ

रचयिता—मणी मनेश्वर साहू 'ध्येय'

धन्य हैं, उन्हीं का जीवन

जो

कष्टों से गुजरकर भी

छोड़ना चाहता हो,

अपना पदचिह्न!

शायद

वे जानते हैं कि

आनन्द आनन्द से नहीं

कष्टों को सहकर ही मिलता है।

गुलाब, कांटों के बीच रहकर भी

मुस्कुराते हुए खिलता है।

यही है जीवन पथ

और

यही है राह

जीवन सफलता की।

गुलाब की तरह ही

मनुष्य का जीवन भी

होता है श्रेष्ठ

इसलिये...

महकायें पथ, महके उज्ज्वल कर्मों से

सबका जीवन पथ

खिलें मुस्कुराते गुलाब की तरह।

---

अनेक मठों एवं आश्रमों की बरबादी देखकर यही निवेदन है कि हर मठ एवं आश्रम को संस्था बना दिया जाये। व्यक्ति महंत एवं साधुवेषधारी का मन बिगाड़ जाने पर वह सम्पत्ति खराब कर सकता है, परन्तु जब अनेकों के अधिकार में सम्पत्ति रहती है, तो कोई अकेला खराब नहीं कर सकता और संस्था के सभी अधिकारी एवं सदस्य खराब नहीं होते। यदि संस्था का कोई अधिकारी एवं सदस्य खराब होता है तो संस्था मीटिंग में विचार कर संस्था से उसे निकाल देती है।

# आदर्श जीवन

## साथी हाथ बढ़ाना

पूना और मुम्बई में अधिक अन्तर नहीं है। अन्तर इतना ही है कि पूना है शान्त और स्वस्थ, जबकि मुम्बई अलमस्त और अस्वस्थ। तूफान में चक्कर काटते हुए पत्ते की भांति लोग वहां दौड़ते रहते हैं। लोकल ट्रेनें मुम्बई की प्राण ही हैं। लोग जब 'आठ बत्तीस वाली पकड़नी है', 'पांच-पच्चीस वाली लगती है, चली गयी।' 'साढ़े सात वाली की आज आशा नहीं है'—ऐसा बोलते हैं, तब कितना अजीब लगता है!

छुट्टियों में मुम्बई गया था। दादर स्टेशन पर बैठा था। कहीं जाने की शीघ्रता नहीं थी, इसलिए निश्चिन्तता के साथ घड़ी की सुइयों की तरह दौड़ती हुई भीड़ को देखने का आनन्द ले रहा था। पूना में यह सब कहां देखने को मिलता है।

'साब! पोलिश'—मेरे रंग में भंग हुआ।

मैंने मना किया, परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर 'चमक बढ़ाओ' वाली बात कहकर अपना जूता आगे बढ़ा दिया। पालिशवाला अपने साधन नीचे रखा और मैं भी पालिश करने वाले स्टैण्ड के पास ही स्थितप्रज्ञ की तरह खड़ा हो गया।

उसने काम प्रारम्भ तो किया, परन्तु उसमें मजा नहीं आ रहा था। मुम्बई वालों की स्फूर्ति उसमें नहीं थी। जब अधिक देर खड़ा रहना सहन-शक्ति के बाहर हो गया, तब मुंह से निकल गया—'अरे भाई! कैसे ठण्डे दिमाग से काम करते हो। कुछ शीघ्रता करो।' वह मौन रहा। मुझे उसका मौन रहना अच्छा नहीं लगा, परन्तु किया क्या जाये? इतने में दूसरा पालिश वाला वहां आ गया। उसने इसको तुरंत अलग कर दिया और स्वयं काम में जुट गया। काम एकदम फटाफट। पहले वाला गूंगे की तरह एक ओर खड़ा रहा। मुझे ऐसा लगा कि यह अभी नया ही नया है। इसलिए ये मुम्बई के उस्ताद पालिश वाले उसे अपने ढंग से परेशान करते हैं।

पैसे किसे देने हैं, इसपर विचार करते हुए मैंने जेब में हाथ डाला। मुझे लगा कि अभी इन दोनों में पैसों के लिए झगड़ा या मारपीट होगी। 'समर्थ ही का सब कुछ' इस सिद्धान्त के अनुसार मैंने बाद में आने वाले पालिश वाले को पैसे दिये। उसने पैसे ले तो लिये, परन्तु तुरन्त ही पहले वाले को दे दिये। प्रेम से पीठ थपथपायी और हाथ मिलाकर चल दिया। अब मैं थोड़ा स्वस्थ हुआ। मैंने उसको तुरन्त वापस बुलाया और सीधा प्रश्न किया—'यह क्या चक्कर है?'

"साब, ये किशन तीन महीने पूर्व चलती लोकल ट्रेन से बाहर गिर गया था। बहुत चोट आयी। पैर में से टांके आये और हाथ में भी बहुत चोट आयी। बेचारा बच ही गया; नहीं तो वृद्धा मां और पांच बहनों का क्या होता—इधर-उधर भटकती फिरती।"

अब किशन पहले की भांति स्फूर्ति से काम नहीं कर सकेगा, यह सोचकर स्टेशन पर रहने वाले हम सब साथियों ने तय किया कि प्रत्येक अपने एक जोड़ी जूते की आय नित्य किशन को दिया करेंगे और अवसर पड़ने पर उसके काम में सहायता भी करेंगे।" दूसरे पालिश करने वाले की बात सुनकर मैं तो चकित ही रह गया।

किशन तथा उसके साथी स्टेशन पर आने-जाने वाले सब यात्रियों को मानो सन्देश दे रहे हों—'साथी हाथ बढ़ाना।'

इस बात को कितना समय हुआ, स्मरण नहीं, परन्तु जब भी मैं मुम्बई या विशेषकर दादर स्टेशन पर जाता हूँ, तब किशन और उसके साथी स्मरण हो ही आते हैं। दादर स्टेशन की अपार भीड़ में मेरी आंखें किशन को ढूंढती रहती हैं। (अखण्ड-आनन्द)

—विजय रतिलाल पीर

(साभार : कल्याण, जुलाई )

पैसा, पद, प्रतिष्ठा प्राप्ति में भले दूसरों से पिछड़ जायें, किन्तु सेवा, प्रेम, क्षमा, संतोष, सहनशीलता और विनम्रता में सदैव दूसरों से आगे रहने का प्रयास करें।

# बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

व्याख्याकार—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

(प्रथम खण्ड : बीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : अठारहवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 250 रु०, द्वितीय खण्ड 250 रु०।

## निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 12.50 रुपये

वार्षिक 40 रुपये

आजीवन 800 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

## पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद-211011

फोन : 2090366, 7376786230

Vist us : [www.kabirparakh.com](http://www.kabirparakh.com)

E-mail : [kabirparakh@yahoo.com](mailto:kabirparakh@yahoo.com)

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., इलाहाबाद से मुद्रित